प्राक्कथन

कलात्मक सार्थक काव्य साहित्य सृजन दीपक के समान स्वत: आलोकित होता है। उसमें प्रभावोत्पादकता स्वत: अन्तर्निहित होती है। अत: रचना को समीक्षा के बाह्य प्रकाश की विशेष आवश्यकता नहीं रहती तथापि समीक्षा का संस्पर्श सृजन की दीप्ति को उसी प्रकार सवंर्द्धित करता है, जिस प्रकार शीशे की चिमनी दीपक के प्रकाश को अधिक धवल और दीप्त बना देती है। समीक्षा का महत्व इस दृष्टि से भी है कि वह रचनाकार को उसके सृजन के गुण-दोषों का साक्षात्कार कराकर उसके सृजन की दिशा को और भी अधिक निर्दोष एवं उपादेय बनाने की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करती है। शर्त यह है कि समीक्षा निष्पक्ष-निर्भान्त और तथ्यपरक हो। समीक्षा की शोधपरक दृष्टि असीमित और उपेक्षित सृजन को समाज और समीक्षकों के समक्ष उपस्थित करती है। प्रस्तुत समीक्षा ग्रन्थ इन्हीं उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर लिखा गया हैं।

समाज साहित्य से अभिन्न होता है और समाज में होने वाले परिवर्तनों की अनुगूँज उसमें सुनी जा सकती हैं। साहित्य की विधाएँ उससे प्रभावित होती ही है, विशेषत: गीत जीवन में अर्न्तलीन होते है, या ऐसा भी कह सकते है कि उसमें जीवन अर्न्तलीन होता है। गीत एक तरफ भले ही मनोरंजन का साधन समझा जाता हो किन्तु समाज के प्रति अपने दायित्व को भी उसने उपेक्षित नहीं किया है। गेयता, संगीतात्मकता, माधुर्य, कोमलता, भावनात्मकता की प्रधानता से युक्त हिन्दी गीतों का संसार भी समय एवं कालक्रमानुसार अपने में अर्न्तबाह्य परिवर्तन करते हुए अपना अस्तित्व अंकित करता रहा। यद्यपि समीक्ष्य कवि श्री चन्द्रसेन विराट स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य के लब्धप्रतिष्ठ सुस्थापित कवि है। किन्तु फिर भी किसी भी रचनाकार का महत्व उसकी समकालीनता एवं समसामयिकता से ही होता है।

श्री विराट के काव्य में विशेषत: गीतों में मानवीय जनजीवन को सकारात्मक रूप से, उसकी कमियों को उद्‌घाटित करते हुए उभारा गया है। यह जीवन में भाग लेते हुए, उसकी समस्याओं से लडते-जूझते हुए आम आदमी के जीवन से जुडे गीत है। उनके गीत विपरीत परिस्थितियों में भी मानवीय मूल्यों

की सुरक्षा चाहते है। जनमानस के दु:ख पर संवेदना प्रकट करने के साथ-साथ उन पर आक्रोश भी व्यक्त करती है। श्री विराट सामाजिक यथार्थ के पथ पर खडे होकर समाज के बिखरते जीवन मूल्यों तथा त्रासद कारकों पर अपनी लेखनी चलाकर परिवर्तनकामी शक्तियों के साथ मिलकर संघर्ष में अपनी सक्रिय भागेदारी चाहते है।

समकालीनता के इस नए तेवर ने समकालीन साहित्य को एक नई दिशा और पहचान प्रदान की है। समग्रता में व्यक्ति की अस्मिता की पहचान कराते हुए वह सकर्मकता में विश्वास करती हुई हमारे अनुभवों के निजी संसार को वृहत्तर समाज से जोडती है। श्री विराट के गीतों का समसामयिकता की कसौटी पर मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका गीत काव्य एक गंभीर उत्साह आत्म गौरव और संघर्ष परायणता से दमक उठा।

यह लघुशोध प्रबन्ध शिक्षा मण्डल वर्धा के सभापति श्री संजय भार्गव, महाविद्यालय के प्राचार्य श्री एन. वाय. खण्डाईत पुस्तकालयाध्यक्ष श्री पी. एम. पराडकर, पुस्तकालय विभाग एवं समस्त सहयोगियों के मार्गदर्शन एवं सहयोग का प्रतिफल है। अतः उन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

विद्यापीठ अनुदान आयोग मे मेरे प्रस्ताव को स्वीकृत कर इस शोध कार्य के लिए मुझे निधि उपलब्ध करवाई; इसके लिए मैं विद्यापीठ अनुदान आयोग का आभार व्यक्त करती हूँ।

परिवार के सभी सदस्यों, जीवन सहचर प्रा. श्री हितेश कल्याणी के प्रेरणा एवं सहकार्य, पुत्र यश कल्याणी, निमिश कल्याणी एवं पुत्री पिया कल्याणी की भी आभारी हूँ, जिनके स्नेहिल सम्बल के बिना यह शोध कार्य पूर्ण नहीं हो सकता था।

साथ ही श्री चन्द्रसेन विराट के ज्ञानपुंज आशीर्वाद के लिए भी हृदय से कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने सदैव अपना अमूल्य समय एवं स्नेहिल मार्गदर्शन देकर मेरे पथ के तिमिरआवरण को अनावृत किया।

इस शोध कार्य को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग देने वाले सभी व्यक्तित्वों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

धन्यवाद।

डॉ. अनिता टेकवानी

विषय प्रवेश

रचना जनहित साधन का सारस्वत अनुष्ठान है। मनुष्य ने मानव कल्याण के लिए जितनी भी व्यवस्थाएँ निश्चित की है, उनमें सर्वाधिक सुन्दर, सर्वाधिक मांगलिक और सर्वाधिक स्थायी व्यवस्था रचना अर्थात् शब्द की है। व्यवहारत: सिद्ध है कि कोई भी रचना शब्द के स्तर पर साहित्य के रूप में मनुष्य का पथ आलोकित करती है। जहाँ सामाजिक, वाणिज्यिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं में जल्दी-जल्दी उलट-फेर होते रहते हैं और व्यवस्थाएँ बनती बिगडती रहती है, वहाँ शब्द के स्तर पर स्थापित ग्रन्थ व्यवस्था चिरकाल तक जनहित को प्रभावित करती है। आज भी हमारे जीवन का मांगालिक पक्ष बहुत कुछ वैदिक-पौराणिक व्यवस्था से ही व्यवस्थित है। वैश्विक उदारीकरण और वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव यदि मनुष्य को उपभोक्ता मात्र मानने वाली कुटिल व्यवसाय बुद्धि को दूर रखकर देखें तो उनमें बहुत भेद नहीं हैं। सार यह है कि चिन्तन का अमूर्त रूप जब शब्द रूप में मूर्त होकर ग्रंथाकार धारण करता है, तब मनुष्य की वर्तमान और भावी-पीढियों के निर्देशक की चिरस्थायी भूमिका में आ जाता है।

गीत, नवगीत, अगीत के पडावों को पार करती हुई हिन्दी गीतों की दुनिया ऋजुता, स्निगधता कुदुराग्रह आदि भावो से लेकर अ-तरल, अ- भावुक, अ- मधुर स्वरूप तक की यात्रा की पथिक रही है। भावना के भूचाल, उनके ज्वालामुखी, विचारों के तूफान, अनुभवों के दबाव, संगीत और विचारों का आग्रह, काव्यत्व, अ-काव्यत्व, वैयक्तिक अनुभूतियाँ, सामाजिक प्रतिबद्धताएँ, समस्याएँ, विचार-लय का आग्रह, आदि की पक्ष- विपक्ष की पक्षधर बनती गीत विधा के तेवर हिन्दी गीत विधा के विशेष बिन्दु है।

अभिव्यक्तियाँ और अनुभूतियाँ गीत को सीधे उत्तर आधुनिकता से भाव और भाषा दोनों दृष्टि से जोडती है। यही प्रतीत होता है कि भावनात्मक धरातल पर जन्मी-पनपी गीत विधा सही मंजिल, विचार, धरातल पर स्थिर हो गयी हैं और उसे प्राप्त हो गयी है गीत की समसामयिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध होने की ललक। अ-गीत के बावजूद गीत विधा अपने भाव-भाषा, विचार शिल्प को गन्ध के अन्त:स्रोत सरस्वती सी संजोती चली गयी। गीत की मूल भाव-भूमि पृथ्वी की तरह ठोस, संयुक्त और

जीवन स्रोतों से ओतप्रोत होने के कारण यह विधा समय एवं साहित्य के सभी मापदण्डों पर उतीर्ण होती चली गयी।

साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवेश, परिप्रेक्ष्य, सन्दर्भ ढूंढे जाते है। ये सरोकार स्पष्ट ठोस रूप में साहित्य में जितने चित्रित होते है, उतना ही वह साहित्य जीवन के लिए रसपूर्ण माना जाता है। अत: गीत में भी विशुद्ध आनन्द की अनुभूति तलाशने की अपेक्षा हमेशा समसामयिक सरोकार ढूंढे जाते है। यानि स्थिति चाहे जो हो, रचनाकार चाहे जिस धरातल पर हो, उसमें यथार्थ का होना शर्त सा बन गया है। परिणामत: विवेच्य लघु शोध प्रकल्प में लब्धप्रतिष्ठ गीतकार श्री चन्द्रसेन विराट के गीतों में समसामयिक चिन्तन एवं चेतना को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। उन्होंनें अपने भावों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है–

''दर्द आदर से सहा है हमने
ज्ञान अनुभव से रहा है मैने ।
दिल ने महसूस जो किया उसको
पूरी ताकत से कहा है मैने।।

(कुछ पलाश कुछ पाटल)

इस समीक्षा कार्य को करने के लिए इस प्रकल्प को सरल एवं सुबोध अध्ययन की दृष्टि से आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। निसन्देह यह शोध अध्ययन गंभीर विश्लेषण व ज्ञान की अपेक्षा रखता है; ऐसा विचारकर शोध प्रबन्ध के इन अध्यायों को विषय की दृष्टि से सरल एवं सुकर बनाने का प्रयत्न किया गया है। तथापि गलतियाँ करना मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है, अत: अज्ञानतावश इस शोध प्रबन्ध में त्रुटियों की सम्भावना हो सकती है, जिनके लिए मैं विद्वान पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ। यदि इस लघु शोध प्रबन्ध के फलस्वरूप श्री चन्द्रसेन विराट का कृतित्व हिन्दी जगत के विद्वानों के समक्ष अध्ययन, मनन हेतु सहायक हो सके तो मेरे इस समीक्षा कार्य का उद्देश्य सफल होगा।

प्रस्तावना

ग्रंथरचना सभी रूपों में मानव-मंगल-विधान को प्रभावित करती है तथापि उसके प्रभाव में भेद होता है। शास्त्र करणीय-अकरणीय का भेद पिता की डाँट के समान समझाता है, जबकि साहित्य इसी तथ्य को माता की प्यार भरी समझाइश के समान समझाता हैं। पिता(शास्त्र) की डाँट से मन भयाकुल होकर जिज्ञासाओं के शमन का साहस नहीं जुटा पाता जबकि माता (काव्य) के वात्सल्यपूर्ण निषेध में सम्बन्धित विषय से जुडे प्रश्नों का समाधान पाने का साहस सहज ही बना रहता है। जहाँ डाँट कभी-कभी विद्रोह को भी उत्पन्न कर देती है, वहीं वात्सल्यपूर्ण निषेध अन्त: अनुशासन की ओर ही प्रेरित करता है। इस रूप में साहित्य की सर्जनात्मक भूमिका शास्त्र की भूमिका से कहीं अधिक मधुमती हैं, अधिक महत्वपूर्ण है। ठीक इसी प्रकार साहित्य में गद्य की तुलना में पद्य और पद्य में भी गीति विशेष महत्त्वपूर्ण है। कारण यह है कि गद्य विचार प्रधान होने के कारण बुद्धि को प्रभावित करता है, जबकि भाव व संगीत का संस्पर्श पाकर पद्य मानसिक वैचारिक विकृतियों से व्यथित अस्वस्थ चित्त को परिष्कृत और स्वस्थ बनाने की रामबाण औषधि है तथा आत्माभिव्यंजना की तरल भावधारा के प्रवाह के लिए उपयुक्त सर्वाधिक समतल पथधरातल है।

जीवन रूपी सिक्के के सुख और दुख नामक दो पहलू है, जीवन इसके बिना अधूरा है; जिस तथ्य को हम सुख के प्रकाश में देख नहीं पाते हैं, उसे हम दुख के अंधकार में सहजता से अनुभव कर लेते है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में दुख नहीं चाहता, किन्तु शायद दुख ना होता तो काव्य एवं साहित्य का भी अस्तित्व ना होता, इसलिए तो कहा भी है कि-

आह से उपजा होगा गान
विरह से निकला होगा गान
निकल कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

सीधे स्पष्ट शब्दों में कहें तो पीडा की अनुभूतियाँ ही काव्य की जननी है। आधुनिक युग के संघर्ष और तनावों के बीच गीत ही एक ऐसा माध्यम है, जो संगीतबद्ध हो या बिना संगीत के सुना जाये, गाया जाये या गुनगुनाया जाये पर भीड भरी इस दुनिया में भी अपनेपन को तरसते मन को अकेले ना होने का

एहसास होता है। आज गीत पर भले ही भावुकता या शास्त्रीयता का आरोप लगााकर उसकी उपेक्षा की जा रही है। शैली व शिल्प की सादगी या विशिष्टता के माध्यम से किसी गीतकार को आप भले ही प्रचारतन्त्रों के माध्यम से कितना ही स्थापित करना चाहे, पर वह पाठकों के मन में उतनी जगह नहीं बना सकता है। गीत गर्भित अनुभूतियों को बहुआयामी रूप में छायावादोत्तर काल के गीतकारो ने पूरी शिद्दत के साथ लिखा है और हिन्दी की गीत विधा को समृद्ध किया है, उनमें समसामयिक चिन्ता के साथ ही चेतना भी अभिव्यक्त होती रही है।

तमाम गीतकारों में समय एवं सत्य को ठीक–ठीक समझे बिना ही अपने लिखे कृतित्व को छपने–छपाने की बेकली है, पर कोई भी साहित्यिक रचना तभी प्रासंगिक एवं प्रभावशाली बन सकती है, जब उसका कथ्य अपने समय व समाज को प्रतिबिंबित करता हो। आज अनेक गीतकार अपने समय व सत्य को समझे बिना ऐसा ताना–बाना बुन रहे है कि उनके गीत पाठकों को या तो अतीत के खण्डहर में ले जाते है या भविष्य की अंधेरी सुरंग में भटकने के लिए छोड देते हैं, ऐसे गीतो का कथ्य परीलोक की कथाओं, तोता–मैना के संवादो, वैयक्तिक अवसाद रागिनियों, दूसरे ग्रह की अबूझ पहेलियों आदि को समाये प्रतीत होता है। तथा उनमें वर्तमान जीवन जगत का कुछ भी दिखाई नहीं पडता – न सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ, न मानसिक प्रवृतियां और न देश दुनिया की कोई समस्या या उसका समाधान, वहां बस शब्दों का एक जाल रहता है, जिसमें गीतों के शिल्प की शर्तो का निर्वहन हुआ तो हुआ, वरना वह भी नहीं।

प्रस्तुत लघु शोध ग्रन्थ में श्री चन्द्रसेन विराट जी के गीतों में निहित समसामयिक चिन्तन एवं चेतना को विस्तृत ढंग से विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। अनुभूति के स्वर, राष्ट्रीयता के स्वर, चुनौती के स्वर, अभिव्यक्ति की छटपटाहट, बिखरते मानवीय मूल्यों के प्रति चिन्ता आदि भाव उनके सक्रिय चिन्तनशील, सकारात्मक व्यक्तित्व के जीवनानुभव है। उनके गीत जिजीविषा के गीत है या यूँ कहा जा सकता है कि विविध स्वरों में बद्ध जिन्दगी के गीत है। इन स्वरों में कोई भी स्वर क्षीण नहीं हुआ है, ना संघर्ष से, ना हारने से। वे सन्दर्भ, प्रतीक, बिम्बों में व्यक्त व्यक्ति जीवन के विभिन्न अनुभवों के चश्मदीद गीत है।

कवि वादों एवं विचारधाराओं से निष्पक्ष होकर भी अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती विचारधाराओं में कैसे काव्य सृजन करता है और स्थल काल के परे जाते हुए स्थल को कैसे समेटता है इस तथ्य का विश्लेषण श्री विराट के काव्य अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है।

• अध्याय - १ •

हिन्दी गीत का उद्‌गम और उसकी विकासयात्रा

१.१ साहित्य का उद्‌भव :

जब साहित्यकार का हृदय किसी घटना, दृश्य, व्यक्ति के कृत्य, सामाजिक विक्षोभ इत्यादि से आन्दोलित होता है, तो अभिव्यक्ति के लिए वह आतुर हो उठता है. किसी भी रूप में हुई वो अभिव्यक्ति साहित्य कहलाती है। साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति को कल्पना कौशल, भाषा की शक्ति एवं वाणी की विदग्धता से चारुता प्रदान कर ग्राह्य बनाता है. इस प्रकार साहित्य प्रयत्नजन्य नहीं, अपितु विवशता का परिणाम अथवा नैसर्गिक होता है। यह बरबस या हृदय की भावना से उद्‌भूत होता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या साहित्यकार को भावाभिव्यक्ति के लिए अथवा अपनी अनुभूति के प्रस्तुतीकरण के लिए मस्तिष्क अथवा विवेक की आवश्यकता नहीं होती ? निसन्देह आवश्यकता होती है। क्योंकि यदि भावना पर विवेक का अंकुश नहीं होगा, तो वह प्रलाप मात्र हो जायेगा, किन्तु वह विवेकशील अंकुश साहित्य को सार्थक स्वरूप प्रदान करने के लिए होता है।

साहित्य समय का अतिक्रमण करता है. मानवीय चेतना की बहुअर्थी अभिव्यक्ति है- शब्द। शब्द का प्रत्यक्ष उसके प्रयोक्ता की अंतश्चेतना - मानसिक ऊर्जा, बौद्धिक तर्क-वितर्क, मनोद्वेग तथा संवेदन आदि के बाह्य प्रकाशन के रूप में होता है। ज्ञान-विज्ञानात्मक वाङ्मयीन विधाओं की अपेक्षा साहित्य में प्रयुक्त शब्द ऊर्जा आदि अपनी समस्त शक्तियों के साथ उपस्थित होता है।

दिक्काल में घटित अथवा घट्यमान कोई भी घटना या स्थिति साहित्य के लिए अस्पर्श्य नहीं है। लेकिन काल या समय के साथ साहित्य का रिश्ता कहीं अधिक गहरा और व्यापक है। एक सजग और जीवन्त रचनाकार की रचना में उसका वर्तमान ही प्रतिबिम्बित होता और रूपाकार ग्रहण करता है। यही वर्तमान उसको नवीनता प्रदान करता हैं और अतीत को अर्थवान बनाता है।

१.२ साहित्य का अर्थ :

साहित्य का जगत-भावना, कल्पना और अनुभव का संसार है और विज्ञान का जगत-बुद्धि और तर्क का परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विज्ञान में भावना की और साहित्य में बुद्धि की कोई आवश्यकता

ही नहीं है। मनुष्य मात्र का अधिकाधिक हित इन दोनों के समन्वय से ही है, पर फिर भी साहित्य चिर नवीन है, चिरन्तन है और आत्मिक परिष्कार हैं। अपने इसी लक्ष्य- आत्मिक परिष्कार की प्राप्ति साहित्य अलग-अलग विधाओं के माध्यम से करता रहा है।

वास्तव में प्रगतिशील, अनुभूतिशील जीवन का लिपिबद्ध व्यक्तीकरण ही साहित्य है। इसी को यों कहे कि मनुष्य का और मनुष्य जाति का भाषाबद्ध या अक्षरबद्ध ज्ञान ही साहित्य है।

ज्ञान-राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है। जेनेन्द्र के अनुसार मानव जाति की इस अनन्त निधि में जितना कुछ अनुभूति भण्डार लिपिबद्ध है, वही साहित्य है और भी अक्षरांकित रूप में जो अनूभूति संचय विश्व को प्राप्त होता रहेगा, वह साहित्य ही होगा । साहित्य का अर्थ बहुत व्यापक है, जो कुछ ज्ञान से सम्बन्धित है, वही साहित्य है।

संस्कृत में एक शब्द हैं - वाङ्मय। भाषा के माध्यम से जो कुछ भी कहा गया, वह वाङ्मय है। **'शब्दार्थो सहित काव्यम'** अर्थात शब्द और अर्थ का सहित भाव ही काव्य है। सहित का अर्थ है- साथ-साथ होना। इस परिभाषा में प्रयुक्त सहित शब्द ही आगे चलकर साहित्य रूप में स्वीकार किया गया। वाङ्मय के दो भेद- शास्त्र एवं काव्य हैं। शास्त्र में भौतिकी, समाज या मानविकी से सम्बन्धित सभी ज्ञान इस श्रेणी में आ जाते है। लेकिन काव्य साहित्य का ही एक रूप हैं। संस्कृत आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण लिखकर साहित्य शब्द को प्रचलन में ला दिया।

आखिर इस साहित्य शब्द में ऐसी कौनसी विशेषता है, जिसके कारण शब्द एवं अर्थ शब्द की महिमा को प्राप्त करते है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए संस्कृत **आचार्य कुन्तक** कहते है कि जब **''शब्द व अर्थ के बीच सुन्दरता के लिए स्पर्धा या होड लगी हो तभी साहित्य की सृष्टि होती है।''** यही होड व स्पर्धा साहित्य का धर्म है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अत: साहित्य को पढने पर अपने आनन्द को वह सबके साथ बाँटना चाहता है और अपने उस आनन्द को कारण के साथ बताता है। उस आनन्द के पीछे शब्द और उसके अर्थग्रहण का भाव निहित हैं। वह अपने अलावा दूसरे के कार्य करने में रस अर्थात आनन्द अनुभव करता है, जब मनुष्य की कोई वाणी समाज में परस्परता के इस भाव को मजबूत बनाती है, उसे साहित्य कहा जाता है।

जब कोई अपने एवं पराये की संकुचित सीमा से ऊपर उठकर सामान्य मनुष्यता की भूमि पर पहुँच जाये तो समझना चाहिए कि वह साहित्य धर्म का निर्वाह कर रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे ह्रदय की मुक्तावस्था कहा है।

साहित्य शब्द को परिभाषित करना कठिन है। जैसे विज्ञान में हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के संयोग के बिना पानी नहीं बन सकता, पर वह इन दोनों में से कुछ भी नहीं है। क्योंकि दोनों गैसों के विशेष संयोग का नाम पानी है, वैसे ही शब्द और अर्थ मिलकर साहित्य की पदवी प्राप्त करते हैं। उदाहरणत: पानी की अपनी कोई आकृति नहीं होती, उसे जिस साँचें में डालो वही रूप धारण कर लेता है, उसी तरह का तरल है यह शब्द। कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध, रिपोतार्ज, जीवनी, समालोचना आदि बहुत से साँचे हैं, जिनमें यह शब्द विविध रूप धारण करता है। परिभाषा इसलिए भी कठिन हो जाती है कि धर्म, राजनीति, समाज, समसामयिक आलेख, भूगोल और विज्ञान जैसे विषयों पर लेखन हैं, उसकी क्या श्रेणी हो? क्या साहित्य की परिधि इतनी व्यापक हैं?

केवल संस्कृतनिष्ठ या क्लिष्ट लेखन कर केवल पाण्डित्य प्रदर्शन करना ही साहित्य रचना नहीं है, न ही अनर्थक तुकबंदी साहित्य कही जा सकती है। वह भावविहीन रचना जो छन्द व मीटर के अनुमापों में शतप्रतिशत सही भी बैठती हो, तो भी वह वैसी ही कांतिहीन है, जैसे अपरान्ह में जुगनू। अर्थात भावप्रवणता किसी सृजन को वह गहराई प्रदान करते हैं, जो किसी भी रचना को साहित्य की परिधि में लाता हैं। कितनी सादगी से निदा फाजली कहते है कि –

''मैं रोया परदेश में, भीगा माँ का प्यार
दु:ख ने दु:ख से बात की, बिन चिठठी बिन तार ।''

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है. जीवन विविध विचारों और भावों से संकुल होता है. विचारो का सम्बन्ध मस्तिष्क से और भावों का हृदय से होता है। दोनों के सन्तुलित समन्वय से ही जीवन का सुचारू रूप से परिचालन होता है। मस्तिष्क विचार एवं चिन्तन–मनन के द्वारा जीवन की ऐहिक तथा पारलौकिक समस्याओं को सुलझाता हैं तथा भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा जीवन की ऐहिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा जीवन को सुख समृद्धि से पूर्ण करके सुगम बनाने का प्रयत्न करता है। हृदय भावना और अनुभूति के द्वारा जीवन में रस उत्पन्न होता है। जीवन के प्रति आस्था जगाता है। इस प्रकार जीवन की पूर्णता को अभिव्यक्त करने वाला सम्पूर्ण कृतित्व साहित्य ही है। किन्तु हिन्दी में मस्तिष्क और हृदय की समग्र अभिव्यक्ति को वाङ्मय शब्द द्वारा अभिहित किया गया है तथा मस्तिष्क प्रसुत अभिव्यक्ति को **विज्ञान** और हृदय से प्रसूत अभिव्यक्ति को **साहित्य** की संज्ञा दी जाती है।

प्रगतिशील, अनुभूतिशील, जीवन का लिपिबद्ध व्याकरण साहित्य है। या यूँ कहें कि मनुष्य का और मनुष्य जाति का भाषाबद्ध या अक्षरबद्ध ज्ञान ही साहित्य है। मानव जाति की इस अनन्त निधि में जितना कुछ अनूभूति भण्डार लिपिबद्ध है, वही साहित्य है।

१.३ साहित्यकार की भूमिका :

साहित्यकार व्यक्तिगत रूप से अपने समय से बधाँ होता है, लेकिन उसका अंतस्फुरण समय-सीमा का अतिक्रमण करता है। रचनात्मकता अपनी विकास-यात्रा का निर्धारण स्वयं करती है। प्रतिभा जिस प्रेरणा से स्फूर्त होती है, उसका स्पंदन साहित्यकार के भीतर कहीं बहुत गहरे में होता है। वह स्पंदन इतना स्वाधीन है कि कई बार वह साहित्यकार की मान्यताओं को भी मानने से इंकार कर देता है।

जहाँ साहित्यकार अपने युग की सृष्टि है और साहित्य उसकी अनुभूति एवं उसके चिन्तन की अभिव्यक्ति है। वहीं वह युग की चेतना का वाहक और प्रहरी भी है। उसे चतुर्दिक जागरूक होकर आँखें खोलकर, देखने-सुनने-समझने एवं अपनी लेखनी से निर्भय होकर उतारने की तथा फिर उसे सही गति देने की आवश्यकता है, तभी वह अपनी वास्तविक भूमिका का निर्वाह करता है। साहित्यकार अपने युग के समाज में जन्म लेता है, पलता है, उसकी धमनियों में समाज द्वारा उत्पादित खाद्य से रक्त-संचार होता है, उसके तन का रोम-रोम उसकी मिट्टी से गढा जाता है। इसलिए उसके हृदय में भावों का उन्मेष और उसके मस्तिष्क में विचारों का उद्‌भव समाज के परिवेश के कारण ही होता है। अतएव उसका समाज के प्रति महान उत्तरदायित्व है। जिस समाज में वह जीवन जीता है, वहीं उसे साहित्य-सृजन की प्रेरणा भी देता है। समाज की परिस्थितियाँ ही उसके अन्तर को झकझोरती है, आन्दोलित करती है और उसे अभिव्यक्ति के लिए आकुल -आतुर बना देती है, तभी वह साहित्य-सृजन में समर्थ होता है और तभी उसका साहित्य जीवन्त साहित्य कहलाता है। जीवन जीवन के लिए कभी नहीं होता, जीवन के साथ किसी न किसी रूप में अनेकों का जीवन सम्बद्ध होता है, चाहे वह अपने ही जीवन की रक्षा के लिए क्यों ना हो और चाहे उसमें अपने ही जीवन में केन्द्रित रहने का भाव क्यों ना हो। साहित्य जीवन की ही अभिव्यक्ति है। इसलिए साहित्य साहित्य के लिए अथवा साहित्य स्वान्त सुखाय का प्रश्न नितान्त हास्यास्पद है। यदि साहित्य सृजन केवल अपनी सन्तुष्टि के लिए हो तो उसके प्रकाशन की क्या आवश्यकता? यदि साहित्य है, तो उसके साथ ही पाठक की भी अपेक्षा होती है और पाठक की प्रतिक्रिया जानने की भी प्रबल उत्कण्ठा रहती है अर्थात् साहित्यकार, पाठक और उसकी प्रतिक्रिया श्रृंखला की कडियों की भाँति परस्पर सम्बद्ध है। ऐसी दशा में साहित्यकार का एक दायित्व महत्वपूर्ण हो जाता है।

एक सच्चे और अच्छे रचनाकार की यही परीक्षा भूमि हैं विशेषत: कवि, उसमें भी प्रबंधकार कवि की, क्योंकि उसे प्राय: अतीत कथाओं और घटनाओं पर निर्भर रहकर उन्हें वर्तमान के संदर्भ में साधना और सर्जनात्मक कौशल के बल पर अपनी रचना के भविष्य के लिए उपयोगी बनाये रखना होता है. वह

वर्तमान में जीता हैं, अतीत को संस्कार देता है और अपने अनुभव सत्य के आधार पर भविष्य के लिए कुछ उपयोगी दिशा संकेत छोड जाता है। काल की इस त्रिआयामिता को साधने के लिए कल्पना दृष्टि, ऊर्जस्विता, समय की विषमता से लडने की अद्‌भुत शक्ति, विद्रूपता के विरुद्ध द्वंद की स्थिति में खडे होने की सामर्थ्य की जरूरत है जो विरले साहित्यकारों में ही मिलती है। सच्चा साहित्यकार न तो प्रलोभन से विचलित होता है और न ही कोई भय उसे अभिव्यक्ति से रोक सकता है. सन्त कुम्भनदास ने राजाग्रह से फतहपुर सीकरी जाने पर पश्चाताप प्रकट करते हुए कहा–

'संतन कहा सीकरी सो काम

आवत–जावत पनहियाँ टूटीं बिसरि जात हरि नाम।'

यही स्वतन्त्र और उन्मुक्त भावना जब साहित्यकार की होती है, तभी वह अपनी वास्तविक भूमिका का निर्वाह कर सकता है. स्वतन्त्रता पूर्व के साहित्यकार ने अपने युग में क्रांति की ज्वाला सुलगाई, असहयोग की वीणा भी सुनाई और विद्रोह का शंखनाद कर स्वंय स्वतन्त्रता के महायज्ञ में आत्माहुति भी दी। मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, यशपाल, आदि अनेक साहित्यकारों ने तन–मन से स्वतन्त्रता समर में भाग लेकर अपनी भूमिका का निर्वाह किया। तत्कालीन साहित्यकार ने जन चेतना को उद्‌बुद करते हुए स्वतन्त्रता समर को गति दी। उसने विदेशी शासन के दमन–चक्र में पिसती हुई भारत माँ की करुण पुकार को सुनकर उसे दास्यश्रृंखला से मुक्त होने में अपना पूर्ण सहयोग किया। फलत: वह साहित्य आज भी जीवन्त प्रतीत होता है। साहित्यकार तो जनता की पीडा का स्वयं भोक्ता है, वह उसके प्राणों के स्पन्दन को अपने प्राणों में अनुभव करता है और अपने कानों से सुनता है; इसलिए वह अपने साहित्य के द्वारा उसके हृदय को आन्दोलित कर उसे अपनी कल्पना को साकार करने के मार्ग पर अग्रसर कर सकता है।

स्वान्त सुखाय का उद्‌घोष करने वाले सामन्तयुगीन भक्त कवि तुलसी का रामचरित मानस क्या केवल स्वान्त सुखाय ही है? यदि उसका स्वरूप केवल स्वान्त सुखाय ही होता तो उसे भाषाबद्ध करने के लिए प्रयास करने की क्या आवश्यकता थी? वस्तुत: अपने युग में यह भी एक दायित्व था और इसमें सन्देह नहीं कि अपने उस दायित्व का उन्होंने भलीभाँति निर्वाह किया है। तुलसी ने कहा भी है कि–

'भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी, राम कथा जग मंगल करनी।'

युग के प्रश्नों ने साहित्यकार को कितना झकझोरा है, उसके भीतर कैसी आग लगायी है, उसे कहाँ तक आहत किया है और उसकी लेखनी ने कितनी संवेदना से, कितनी शिद्‌दत से उसे अंकित किया हैं।

हिन्दी साहित्य के विशाल फलक पर पिछले पचास-साठ सालों में कितने आन्दोलनों ने धूम मचाई; अब तो उनके नाम भी याद नहीं आ रहे। आंधियां ऐसी आयी कि खेमे ही उखड गये। यह दृश्य इस बात को प्रमाणित करता है कि साहित्यकार भेडों के समान नहीं होते जो अपने रेवडों में एक दूसरे के पीछे चलती हैं; बल्कि प्रत्येक लेखक का अपना व्यक्तित्व होता है, उसकी सोच का अपना आधार बिन्दु होता है। फैशन के रेंप पर सृजनात्मकता की परेड नहीं करवाई जा सकती। सोच की चिंगारियाँ एकान्त के अलाव से ही फूटती है।

यह तर्कपूर्ण तथ्य है कि इस रामकथा ने न केवल उस युग का, अपितु उसके बाद भी आज तक के युग का पथप्रदर्शन किया है। इसीलिए अगर साहित्यकार अपना दायित्व निभाता है तो वह सार्थक साहित्य का सृजन कर सकता है।

१.४ सत्साहित्य का स्वरूप :

'मलयालम साहित्यकार एस. के. पोट्टेकाट्ट के अनुसार – सत्साहित्य वह है जो मानव मस्तिष्क में सद्भावना का विकास करे, समाज को श्रेष्ठ विचारों को संजोने की सामर्थ्य प्रदान करे, जहां तक साहित्य सृजन के उद्देश्य का सवाल है, मेरे लिए आत्मसंतोष ही साहित्य सृजन का प्रमुख तत्व है। रचना में निमग्न होते समय साहित्यकार का हृदय एक विशेष प्रकार की प्रसन्नता से आप्लावित हो जाता है। इस प्रसन्नता व आनन्द के भावों को पाठकों तक पहुँचा देने के लिए ही मन लालायित होता है।

याद रहे कि साहित्य समय की कोख से जन्म लेकर भी उसी की गोद में खेलता नहीं रहता. वह समय का अतिक्रमण करता है और नयी जीवनी शक्ति के साथ डालकर नया विहान लाता है। घोर अंध तमस में भी कहीं कोई न कोई एक विशिष्ट द्रष्टा ऐसा होता है, जिसकी अंत:ज्योति का प्रकाश हमारे पथ को आलोकित करता है। जो साहित्य काल पर अपनी जीवन्तता और सशक्तता की अमिट छाप छोड जाता है; वह कालजयी साहित्य कहलाता है। जो साहित्य जन चेतना में युगों-युगों तक निवास करता है; वहीं कालजयी साहित्य सत्साहित्य कहलाता है।

१.५ साहित्य और समाज :

कुछ काल पहले तक हमारा साहित्य उच्चवर्गीय था। उस साहित्य के सृजनकर्ता समाज के प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति थे, पर समय के बदलते मापदण्डों के अनुसार साहित्य सृजन भी अब किसी एक वर्ग की धरोहर बन कर नहीं रह गया है, जिनको समाज में पैर टेकने की भी ठौर नहीं है, वे व्यक्ति भी अब लिखते

हैं। पर इन सबसे परे प्रश्न यह उपस्थित होता है कि समाज की ओर साहित्य के क्या दायित्व है? दोनों में परस्पर क्या सम्बन्ध है?

वर्तमान युग में साहित्य अधिकाधिक व्यक्तिगत होता जा रहा है। पहले समाज की नीति-अनीति की, मान्यताओं की ज्यों की त्यों स्वीकृति समाज में प्रतिबिम्बित दिखती थी, अब उसी साहित्य में समाज की उन स्वीकृत और निर्णीत धारणाओं के प्रति व्यक्ति का विरोध और विद्रोह अधिक दिखाई पडता हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि साहित्य यदि पहले दर्पण के तौर पर सामाजिक अवस्थाओं को अपने में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से धारण करने वाली वस्तु थी तो अब वह कुछ ऐसा तत्व है जो समाज को प्रतिबिम्बित तो करे, पर चाटुता से अधिक उसे चोट दे और इस भाँति समाज को आगे बढाने का भी काम करे। साहित्य अब प्रेरक भी है, वह झलकाता ही नहीं अपितु चलाता भी है। केवल हमारा अतीत, हमारी बीती ही नहीं, अपितु हमारे संकल्प और मनोरथ उसमें निहित है।

जो समाज के प्रति विद्रोही है, समाज के नीति-धर्म की मर्यादाओं की रक्षा की जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेकर अपनी ही राह चल रहा है, जो बहिष्कृत है, दण्डनीय है- ऐसा व्यक्ति भी साहित्य सृजन के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता। प्रत्युत देखा गया है कि जो आज तिरस्कृत किये जाते है, वही अपनी अनोखी लगन और निराले विचार साहित्य के कारण कल आदर्श मान लिये जाते है। **साहित्य दो प्रकार के है- एक वह जो समाज की समकालीन स्थिति के लिए आवश्यक हैं, दूसरा वह जो समाज** को गतिशील बनाता हैं। दोनों ही प्रकार के साहित्य प्रयोजनीय हैं। लेकिन यदि अधिक आवश्यक, अधिक सप्राण, अधिक साधनाशील और अधिक चिरस्थायी किसी को हम कहना चाहें तो उस साहित्य को कहना होगा जो अपने ऊपर खतरे स्वीकार करता है और चाहे चाबुक की चोट से ही क्यों ना हो, समाज को आगे बढाता है। वह साहित्य आदर्श प्राण होता है, भविष्यदर्शी होता है, चिरन्तन होता है, किन्तु ऐसा साहित्य सहज मान्य नहीं होता। पहले प्रकार के साहित्य में समाज स्वाद लेता है, प्रसन्न होता है पर दूसरे प्रकार के साहित्य मे ंसमाज को शुरू में कुछ फीका, कठिन और गरिष्ठ महसूस होता है।

साहित्य सामाजिक अवस्था से आगे होकर चलता है। वह न सिर्फ वर्तमान को प्रतिबिम्बित करता है अपितु भविष्य की सम्भावनाओं को भी धारण करता हैं। वह अग्रगामी है समाज की गति धीमी और विचारों की गति तीव्र होने के कारण समाज साहित्य से अनुरंजन ही अधिक पाता है, नेतृत्व कम। साहित्य भावनाजीवी है जबकि समाज अर्थजीवी। अत: उनमें परस्पर आदान-प्रदान तो है ही साथ ही विरोध भी है; किन्तु विरोध तो साहित्य का प्राणतत्व है। अपने सीमित अस्तित्व से हम उस असीम को छूना चाहते

हैं, हम अपनी ही सीमाहीनता को अपने सीमाबद्ध अस्तित्व के भीतर अनुभूति पाते हैं– वे ही क्षण तो साहित्य के जनक हैं. वास्तव में साहित्य समष्टि के साथ व्यष्टि की सामंजस्य सिद्धि का साधक होता है. व्यक्ति जीवन की सत्योन्मुख स्फूर्ति जब भाषा द्वारा मूर्त और दूसरे को प्राप्त होने योग्य बनती है, तब वही साहित्य होती है।

जब तक सत्यान्वेषण की प्रवृति साहित्यकार में है, वे सुन्दर साहित्य की सृष्टि कर सकते हैं यदि नहीं तो व्यर्थ है– क्योंकि जीवन से अनपेक्षित साहित्य न तो जिन्दा रह सकता है, न ही समाज को मार्ग दिखा सकता है। साहित्य वह है जो यर्थाथ से आँख नहीं मींच सकता, जो आदर्श को यथार्थ से और यथार्थ को आदर्श से जोडता हैं।

साहित्य की कसौटी वह संस्कारशीलता है जो हृदय से हृदय का मेल चाहती है, जो लोक हित की भावना को लेकर चलता है और एकता में निष्ठा रखती है। जो सहृदय का चित मुदित करता है वह साहित्य खरा तथा जो चित को संकुचित करता है वह खोटा साहित्य कहलाता है। साहित्य का सर्वोत्तम निकष सत्यं, शिवं और सुन्दरम् ही है। सत्य से तात्पर्य जीवन से विमुख करने वाले कठोर और निर्मम यथार्थ से न होकर मानवीय कल्याण की दिशा निर्देशित करने वाले आदर्श पूर्ण यथार्थ से है। शिव से तात्पर्य साहित्य की सामयिक एवं शाश्वत उपादेयता से है। सुन्दर का अर्थ भी सत्य और शिव प्रेरित प्रभावोत्पादकता का व्यंजक है।

आज के साहित्य की सबसे बडी आवश्यकता सृजन के प्राचीन और नवीन मूल्यों में युक्तियुक्त समन्वय स्थापित करने की है. **पालि भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुत्तनिपात** में स्पष्ट निर्देश दिये गये है कि – **'पुराणं नाभिनन्देय, नवे खान्ति न कुव्वये'** अर्थात पुराने का अभिनन्दन ना करें और नये की उपेक्षा न करें। विचारणीय है कि क्यों? क्या उपादेय होने पर भी प्राचीन को केवल इसी लिए त्याग दिया जाये कि वह प्राचीन है और नवीन को व्यर्थ होने पर भी उसकी नवीनता मात्र के लिए स्वीकारा जाये? मेरे विचार से इस सन्दर्भ में उपयोगिता का निकष सर्वोत्तम है. जो जीवन के लिए उपादेय है, समाज के लिए व्यवहार्य और साध्य है, लोकमंगलकारक है वही ग्राह्म है, फिर चाहे वह नवीन हो या प्राचीन। इसीलिए **मालविकाग्निमित्रम् में महाकवि कालिदास कहते है–**

''पुराणमित्येव न साधु सर्वम्
न चापि सर्वम् नवमित्यवद्यम्।

सन्त: परीक्ष्यान्तरद् भजन्ते

मूढ: पर प्रत्ययनेय बुद्धि:''

अर्थात् पुराना होने से सबकुछ श्रेष्ठ नहीं हो जाता, तथा नया मात्र होने से अग्राह्म नहीं हो जाता। बुद्धिमान जन दोनों को परखने के बाद ही, जो उपयोगी व उत्तम होता है, उसे ग्रहण करते है; जबकि मूढ जन दूसरों द्वारा कथित विश्वासों के अनुसार ग्राह्मता विनिश्चित करते है। सार यह है कि भारतीय काव्य-शास्त्र का प्राचीन निर्देशन और नवचिन्तन दोनों वैचारिक मन्थन की अपेक्षा करते है और दोनों के युक्तियुक्त संग्रहण से सृजन समीक्षा की नव दिशाओं का निर्देशन अपेक्षित है।

१.६ हिन्दी साहित्य का विभाजन :

हिन्दी साहित्य को विविध विद्धानों ने विविध कालों में बाँटा हैं- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल। विषय विस्तार के भय से यहाँ उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है।

१.७ गद्य की अपेक्षा पद्य का वैशिष्ट्य : कविता का उद्भव :

अन्य विधाओं की अपेक्षा कविता में भावप्रवणता एवं कल्पनाविलास अधिक होती है। वह तीव्रावेग से अभिभूत होने के कारण भावक के हृदय को सर्वाधिक प्रभावित करती है। यदि भावना का प्रवाह वाणी की विदग्धता ओर भाषा के लालित्य से मण्डित होकर आवेगमय रहा, तो वह रस मग्न होकर आत्मविभोर कर देती है। अत: कविता में हृदय या भावना का प्राधान्य रहता है, किन्तु विवेक का अंकुश उसके लिए भी आवश्यक है, अन्यथा वह वांछित प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती। इसलिए आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य का विधान किया है। वे तो औचित्य को ही कविता का प्राण तत्व बनाते हैं औचित्य क्या है? विवेक की प्रक्रिया का ही दूसरा नाम औचित्य है। औचित्य के अभाव में कविता अपनी आत्मा के रस को खो बैठती है; तभी तो आचार्यो ने ऐसी कविता को रसाभास और भावाभास के अन्तर्गत स्थान दिया है। रसाभास और भावाभास का अर्थ है - विवेक के अंकुश की शिथिलता. सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं साहित्यिक विधि निषेध का निर्धारण विवेक ही करता है और जब कवि भावावेग के कारण विधि को त्याग कर निषेध की सीमा में प्रवेश कर जाता है तो औचित्य का उल्लंघन हो जाता है; तब काव्य दोष से दूषित हो जाता है। उस समय स्वरचित होने के कारण चाहे उसे अपनी कृति प्रिय हो,पर सहृदय को वह दूषित कृति रुचिकर नहीं होती; ऐसी स्थिति में कवि कर्म व्यर्थ हो जाता है। कवि की भावना को प्रभावशाली एवं ग्राह्म बनाने का कार्य उसका विवेक ही करता है। यहाँ दो उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट किया जा सकता है- जनक वाटिका में पुष्प चयनार्थ राम-लक्ष्मण प्रवेश करते हैं; उसी समय सीता अपनी सखियों के साथ

गिरिजा–पूजन के लिए आती है। एक सखी की दृष्टि राम–लक्ष्मण पर पडती है; वह उनके सौन्दर्य से अभिभूत हो जाती है, और इन शब्दों में सीता के प्रति अपनी भावना की अभिव्यक्ति करती है–

'स्याम गौर किमि कहहुँ बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'

रामचरित मानस–१–२२८–१

वह सौन्दर्य की व्यंजना करने में अपने को असमर्थ पाती है, किन्तु गिरा अनयन नयन बिनु बानी' के द्वारा उनके अपरूप, अप्रतिम एवं अद्‌भुत सौन्दर्य का आभास दिला देती है। उसकी भावना का वेग इन शशब्दों के द्वारा व्यक्त होकर न केवल उसकी उत्फुल्लता, उसके आश्चर्य एवं उसकी भाव–विभोरता को व्यंजित करता है अपितु उनके सौन्दर्य के प्रति आकर्षण और जिज्ञासा का भाव भी जगाता है; यही तुलसी को अभीष्ट भी है। कवि की भावना विवेकाश्रित होकर ऐसा रूप धारण करती है कि सौन्दर्य अकथनीय होकर भी अनुभूत हो जाता है. सौन्दर्य की अतिशयता का दूसरा वर्णन देखिये–

'पत्रा हीं तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास.
नित प्रति पून्यो ही रहे, आनन ओप उजास.'

बिहारी बोधिनी–१०२

इस पद्य को पढकर प्रतीत होता है कि या तो कवि के पास भावना नहीं है या उसकी भावना पर विवेक का अंकुश नहीं है; क्योंकि इस पद्य से रूप की कोई अनुभूति नहीं होती। अतिरंजना के कारण यह वर्णन हास्यास्पद हो जाता है। अब प्रकृति सौन्दर्य के एक उदाहरण को देखिये– केशव प्रात:कालीन सौन्दर्य की मनोरम छटा की अनुभूति कराने के लिए अत्यन्त रमणीय शब्द–योजना प्रस्तुत करते–करते कह उठते हैं कि –

'कै शोणित कलित कपाल यी किल कापालिक काल कौ.'

रामचन्द्रिका

पाठक को प्रतीत होता है कि यहाँ कवि का विवेक विलुप्त हो गया। कहाँ प्रात:कालीन अरुणिमामय सूर्य और कहाँ रक्त–रंजित कपाल! एक तो कपाल शोणित से कलित नहीं हो सकता, शोणित– सनित–घृणित ही हो सकता है, फलत: वह आकर्षण नहीं विकर्षण ही उत्पन्न करेगा। कवि ने न केवल विवेकहीनता के कारण भाव के सौन्दर्य का ह्रास किया है; अपितु वृत्यनुप्रास को भी कलंकित कर दिया है। हिन्दी के छायावादी काव्य जब केवल कल्पना के गगन में विहार कर भू की वास्तविकता को छोडने लगा, तब वह समाप्त हो गया, अतएव कवि की भावना के साथ विवेक का सामंजस्य करना अपेक्षित है।

कविता में भाव की कार्यवाही, इंसानियत एवं स्वंय के प्रति निकटता एवं प्रकृति की रहस्यमयी अभिव्यक्ति का समावेश होना आवश्यक है।

१.८ गीति काव्य का स्वरुप एवं उत्पति :

साहित्य को गद्य, पद्य एवं चम्पू तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है। गद्य के समान पद्य के भी विविध विभाजन किये गये है। कविता, गीत, गजल, मुक्तक, दोहा, शेर, आदि पद्य के रूप है।

गीत : वेदना एवं उल्लास के अतिरेक से मानव की हदयतंत्री स्पंदित होकर जो स्वर विधान करती है, वह गीतिकाव्य की संज्ञा प्राप्त करता है। हर्ष- विषाद, सुख-दुख, प्रसन्नता-पीडा तथा मिलन-वियोग का उल्लास एवं वेदना जब हदय की परिमिति का उल्लंघन कर जाती हैं, तो उसका प्रस्फुटन या तो आनन्द के मुक्ताकणों या व्यथा के अश्रुओं अथवा गीतिमय स्वर लहरी के रुप में होता हैं। यदि ऐसा ना हो तो हदय विदीर्ण हो जाये, उसकी गति बन्द हो जाये और मानव उसकी अभिव्यक्ति की शक्ति को सदा के लिए खो बैठे। अत: गीत या गीतिकाव्य उसके हदय को विषाद के क्षणों में ऐसी क्षमता प्रदान करता है, जिससे वह अन्य मानवों को समानभागी बनाकर हल्का हो जाता है। गीत का उद्‌गार स्वाभाविक है। आवेगों और मनोवेगों की तीव्रता स्वत: ही गीति के रुप में प्रवाहित होकर मानस लहरी को कण्ठ के द्वारा अधरों पर थिरकाने लगती है। यही काव्य का मूल भी है। आदि कवि की वाणी से जो छन्दमय स्वर लहरी निकली थी, वह आदि गीतिकाव्य ही थी। रति-रत क्रोंच मिथुन में से व्याध द्वारा एक का वध होने पर दूसरे की आर्तवाणी को सुनकर तपस्पूत मुनि का कोमल हदय करुणा से विगलित होकर इन शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है :-

''मा निषाद प्रतिष्ठान्त्वगम: श्शाश्वती समा:।
यत्क्रोंचमिथुनादेकमवधी: काममोहिताम्।।''

क्रोंच मिथुन के असीम आन्नद के असीम व्यथा में परिणत होने पर ही अनुष्टुप छन्द में यह अभिव्यक्ति हुई, जिसमें गीति काव्य के सभी तत्व समाहित है। इससे प्रमाणित होता है कि गीति काव्य का जन्म या तो वेदना की मनोभूमि में होता है या उल्लास के क्षणों में। कविवर पन्त ने भी काव्य के मुखर होने के सम्बन्ध में यही कल्पना की है :-

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगाा गान।
उमड कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।''

अर्थात आह से प्रसूत गान ही श्रोता के हदय को अभिभूत करने में सफल होता हैं, इसमें संदेह नहीं। यही गीति काव्य के जन्म की कहानी है।

गीत प्रयत्न का परिणाम नहीं, अपितु हदय के स्वाभाविक उद्रेक का प्रतिफलन है। अत: उसमें वैयक्तिकता का, एकान्तिकता का भाव पाया जाता है। किन्तु, मानव के सुख-दुख पूर्ण भाव एवं आवेग प्रकट होकर मानव मात्र के हो जाते है। फलत: उनमें सभी को आन्दोलित करने की क्षमता होती है। **प्रसिद्ध गीतकार कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा** गीतिकाव्य के इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहती है- वास्तव में कवि को आर्त क्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को दीर्घ नि:श्वासों में छिपे हुए संयम से गीत को बाँधना होगा, तभी उसका हदय गीत में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल होगाा। विशेषत: लोक गीत तो जन समाज के हर्ष-विषाद, सुख-दुख, व्यथा-उल्लास, घृणा-प्रेम, आशा-निराशा तथा मिलन-वियोग के भावों का प्रतिबिम्बन होता है। उनमें जहाँ जीवन के मादक उल्लास की मनमोहक व्यंजना होती है, वहीं जीवन की विषम घडियों में प्रवाहित अश्रुधार भी छलकती है ।इसी से प्रत्येक समाज में प्रत्येक जाति में वहाँ की जनभाषा में लोकगीत पाये जाते हैं और जीवन के प्रत्येक अंग का उनसे गहनतम सम्बन्ध होता है।

पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र से अभिभूत अनेक आलोचक गीतिकाव्य को अंग्रेजी के लिरिक का उपजीवी मानते है, जिसकी व्युत्पति लायर नामक वाद्य यंत्र से हुई है। इसलिए उसको वैणिक (वीणा से उद्भूत) संज्ञा भी दी गई है। किन्तु आलोचक ये भूल जाते है कि गीतिकाव्य का मूल वेदों में है। साम का तो अर्थ ही गान होता है। हिन्दी के कबीर, तुलसी, सूर और मीरा प्रभृति अनेक भक्त कवियों ने अपने उद्गार गीतिकाव्य के माध्यम से ही व्यक्त किये है। आधुनिक गीति काव्य भी उस परम्परा से विच्छिन्न नहीं है।

गीत मानव मन की प्रकृति है – मानव को अनुभव होने वाले हर्ष और पीडा को व्यक्त करने का लोकप्रिय आदिम माध्यम है गीत। वस्तुत: गीत का प्रयोग प्राचीनतम है, क्योंकि गीत में मानवीय वृतियाँ अपने सहज स्थिति में व्यक्त होती है। गीत को इस उल्लेखनीय उपलब्धि का आधारभूत तत्व है- गेयता। प्रारम्भ में इसकी परिभाषा में यही तत्व प्रधान था। इस आधार पर गीत वही है जो गाया जा सके। गीत के षडविध लक्षण इस प्रकार है-

सुस्वर सरसं चैव, सराग मधुराक्षरम।
सालंकार प्रमाण च, षडविध गीत लक्षणम।।

इन लक्षणों में विषयवस्तु की स्पष्ट अभिव्यंजना नहीं थी, मात्र उसके बाहरी लक्षणों का उल्लेख था। वस्तुत: विषय वस्तु मन की स्थिति पर आधारित रहती है। मन अपने सुखात्मक या दुखात्मक अनुभवों को गीत के माध्यम से व्यक्त करता है।

गीत का प्रारम्भिक रूप लोकगीतों के रूप में गतिशील हुआ। यह सांस्कृतिक उपादान प्रारम्भ से लेकर आज तक निरन्तर व्यक्ति और समाज को अपने आकर्षण में बाँधता चला आया है। इन्हीं लोकगीतों का विकसित रूप साहित्यिक गीत हैं।

साहित्यिक गीत : कला का प्रमुख तत्व भाव है। जब निर्वसन भाव किन्ही भावों के कारण कलाकार के कलात्मक संस्पर्श से विशिष्ट बनकर सामने आता है,तब युक्तियुक्तता के आधार पर रसिकों को हार्दिक सन्तोष होना स्वाभाविक ही है। समस्त कलारूपों की तरह गीत भी इसी प्रक्रिया से जन्म लेते है और अपने विशिष्ट व्यापार के फलस्वरूप साहित्यिक प्रतिष्ठा से सम्पन्न होते है। गीत की अदम्य शक्ति और मानसिक भावों से उसके सहज तालमेल ने उसे साहित्यिक प्रतिष्ठा से सम्पन्न किया। उसमें जीवन के शाश्वत स्वरों की अभिव्यक्ति होने से गीत अधिकाधिक लोकप्रियता प्राप्त करता चला गया। इसकी भावात्मक प्रबलता, वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, भाषा की कोमलता और मुक्तक रचना पद्धति ने गीत को साहित्य की अन्यान्य विधाओं में श्रेष्ठतर बना दिया।

गीत की विविध परिभाषाएँ : इस प्रसंग में गीत के स्वरूप को उदघाटित करती हुई कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार से है–

१. **रस्किन** ने गीत की विशेषताओं के आलोक में उसे परिभाषित करते हुए लिखा है– गीति काव्य कवि की निजी भावनाओं का प्रकाश होता हैं। सहज शुद्ध भाव, स्वछन्द कल्पना तर्कवाद और न्याय मूलकता से मुक्त विचार – ये ही गीतिकाव्य की वास्तविक विशेषताएँ हैं। वस्तुत: गीत मन की बात है, अत: उसमें निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है। कवि सहज एवं मुक्त होकर अपने अनुभूति सम्पन्न हृदय को ही गीत के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जिसमें किसी तरह का कालुष्य नहीं, अपितु एक दिव्य पवित्रता अनुभव होती हैं।

२. गीत के स्वरूप को ओर विस्तार देते हुए **ब्रुनेतियर** का मत है कि – गीतिकाव्य में कवि भावानुकूल लयों में अपनी आत्मनिष्ठ वैयक्तिक भावना व्यक्त करता है।

३. **अर्नेस्टरिस** की मान्यता है कि गीतिकाव्य एक ऐसी संगीतमय अभिव्यक्ति है, जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण अधिपत्य होता है, किन्तु जिसकी प्रभावशालिनी लय में सर्वत्र उन्मुक्तता रहती है।

४. गीत को परिभाषित करते हुए साहित्यकोष में लिखा है- अबाध कल्पना, असीम भावुकता, विशुद्ध भावात्मकता, कर्म कोलाहल की चिन्ता से मुक्त विचारधारा अथवा निष्कर्षोपलब्धि के भार से मुक्त भावधारा गीतिकाव्य के प्रकृत विषय है। इसमें सिद्धान्तीकरण का अवकाश नहीं। विचार को भी गीति में भावात्मक माध्यम से ग्रहण करना पडता है। वस्तुत: गीत भावना के साम्राज्य की विषय वस्तु हैं। अत: उसकी स्वछंदता से पूर्ण रचना पद्धति भावना को आन्दोलित करती हैं। भावना से असम्पृक्त कोई विचार अपने प्रकृत रूप में गीत में बँध नहीं सकता है। यही नहीं, बल्कि उपदेशात्मकता या वर्णनात्मकता भी गीत के प्रकृत रूप को तोडकर उसे प्रभावहीन बना सकती हैं। अत: गीत कभी सिद्धान्तवादी नहीं होते बल्कि शुद्धत: भावात्मक धरातल पर स्थित होते हैं। इसलिए गीत में कवि की निजी भावधारा अनुभूतियों के आलोक में लयात्मक अभिव्यक्ति से सम्पन्न होकर ही गीत बनती है। चुँकि अभिव्यक्ति आत्मनिष्ठ है, अत: उसमें आत्मीय संस्पर्श की शक्ति निहित होती है।

५. **श्रीमती महादेवी वर्मा** ने गीतिकाव्य की विशेषताएँ उदघाटित करते हुए कहती है। उनका मत है कि- सुख दुख की भावावेशमयी अवस्था, विशेषकर गिने-चुने शशब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति हैं। महादेवी जी ने तीव्र अनुभूति, संगीत और उपयुक्त शशब्द चयन इन तीन विशेषताओं पर अधिक बल दिया है।

६. गीत के सम्बन्ध में श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का मत भी दृष्टव्य है। उन्होंनें गीत के प्रमुख तत्वों को समटते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार निर्धारित की गई है- गीत एक ऐसी काव्य विधा है, जिसके आधारभूत तत्वों में गेयता, संक्षिप्तता, अनुभूति की तीव्रता, वैयक्तिता, आत्मनिष्ठा, अभिव्यक्ति की सीमितता, बुद्धि पक्ष के स्थान पर हृदय पक्ष की प्रधानता, स्वानुभूति, सहजता, भावानुकूल यर्थाथ, सुख-दुखात्मक वैयक्तिक संवेदना, प्रकृति और मानव का अन्त:-बाह्य सौन्दर्य चित्रण, भाव सघनता आदि प्रमुख तत्व माने गये है। इन परिभाषाओं से यह परिज्ञान होता है कि गीत कवि के निजी भावों की अभिव्यक्ति हैं, जो विविध अनुभूतियों से निष्पन्न होते हैं तथा यह अभिव्यक्ति प्रभाव शालिनी लय द्वारा

संयुक्त रहती हैं। इस प्रकार संगीत का गीत की प्रतिष्ठा में महत्तवपूर्ण स्थान है। अत: गीत के आधारभूत लक्षण दो ही है–

१. तीव्र निजी अनुभूति की मुक्त अभिव्यक्ति २. अन्तर्निहित संगीतात्मकता।

किन्तु इन कतिपय परिभाषाओं के आधार पर गीत के निम्न लक्षण निर्धारित किये जा सकते है–

१. गीत में अनुभूति सम्पन्न तीव्र भाव बोध की मुक्त अभिव्यक्ति निहित है।

२. संगीतात्मकता या लयात्मक विधान गीत के स्वरूप को निर्धारित करता है।

३. मन से संयुक्त होने के कारण गीत सौन्दर्य बोध का चित्रण तीव्र होता है।

४. वैयक्तिकता गीत को गीत रूप में प्रतिष्ठापित करती है।

५. अपनी स्वच्छन्द एवं लघु प्रकृति के कारण गीत आकार में लघु होते है।

६. गीत की रचना पद्धति भाषा शिल्प के अनुकूल वातावरण से संयुक्त रहती है।

यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो उपरोक्त तत्व ही गीत के प्रधान तत्व है। इनके कारण ही कवि अन्तरात्मा में समाई तीव्र अनुभूतियों का प्रकटीकरण और भावक के हृदय के उद्देलन का शमन गीत में एक साथ होता है। यह उसकी सामर्थ्य का परिचायक बिन्दु है।

जयदेव और विद्यापति से श्रृंगारित हिन्दी की गीत परम्परा भक्तिकाल में सूर, मीरा, तुलसी, और कबीर आदि से विषय वैविध्य पा कर फलती रही और आधुनिक काल में विकास के अधिकाधिक अवसर सहेज कर शीर्ष बन कर रह गई। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद तथा इसके समानान्तर चलती स्वच्छन्द प्रगतिशील धारा के अर्न्तगत मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी, दिनकर, बच्चन, अंचल, सुमन, नरेन्द्र शर्मा, नीरज आदि ने गीत की अनेकानेक आभूषणों से अलंकृत किया और श्रृंगाार तक सीमित उसकी झंकार समय तथा परिस्थिति के अनुसार नई चेतना को आवृत करती नित नये नव रूप में नये राग से युक्त होती है।

मानव के हृदय में चेतना के संयोग से जब रागात्मक वृति का संस्पर्श हुआ होगा, तभी उसे भावों के उन्मेष की शक्ति प्राप्त हुई होगी और वे अधरों पर थिरकने के लिए मचल उठे होंगें, जिससे गीत का जन्म हो गया होगा। अतएव गीतिकाव्य को किसी का प्रभाव या किसी से उधार ली हुई वस्तु मानना सर्वथा हास्यास्पद है। अन्तर का उद्वेलन ही तो गीतिकाव्य का मुख्य आधार है। इसी कारण गीतिकाव्य में व्यक्तिगत अनुभूति का प्राधान्य होता है, जो तीव्र आवेग के साथ एकान्विति धारण करती हुई संगीत की तरलता के साथ अभिव्यक्ति प्राप्त करती हैं।

१.९ गीतिकाव्य के प्रमुख तत्व :

- ✤ आत्मपरकता या वैयक्तिकता अथवा आत्माभिव्यंजना
- ✤ गेयता या संगीतात्मकता
- ✤ भावान्विति अथवा एक ही अनुभूति की अभिव्यक्ति
- ✤ अनुभूति की तीव्रता
- ✤ संक्षिप्तता
- ✤ ललित भाषा

गीतिकाव्य के स्वरुप को समझने के लिए इन तत्वों पर विचार करना आवश्यक है।

१. **आत्मपरकता या आत्माभिव्यंजना :** स्वानुभूति अथवा आत्मानुभूति गीति काव्य का प्राण है। गीतिकार जब आत्मकेन्द्रित होकर भाव-विभोर हेाता है, तब उसका हदय गीति के रूप में रसित होकर जनमानस को आन्दोलित कर देता है वह भाव चाहे प्रेम का हो, चाहे भक्ति का, चाहे आह्लाद का हो, चाहे वेदना का समान रुप से तन्मयता उसमें अपेक्षित है। कवि का निजी भाव उसकी प्रतिभा का प्रसाद पाकर सभी का भाव बन जाता है। जीवन की जिन परिस्थितियों का अनुभव कवि को होता है, वैसा ही अनुभव पाठको को होता है। अन्तर केवल इतना है कि कवि में उसे अभिव्यक्ति देने की क्षमता होती है। रागाात्मक वृति की इस समानता के कारण वैयक्तिकता साधारणीकृत हो जाती है और कवि की अनुभूति को समष्टिगत बना देती हैं। इसी से वह केवल कवि की भावना नहीं होती, सभी की भावना हो जाती है। महादेवी वर्मा इस आत्मानुभूति के विषय में कहती है कि – गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख-दुख ध्वनित कर सके, तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें सन्देह नहीं। आचार्य शुक्ल भी केवल वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति को कौतुक मात्र मानते है, काव्य नहीं। यदि यह काव्य या गीतिकाव्य है, तो निश्चय ही उसमें सभी के हृदय को तदनुकूल आन्दोलित करने की शक्ति होगी।

आत्माभिव्यंजना की दृष्टि से **डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन** ने गीतिकाव्य को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है- बाधित, आरोपित और शुद्ध। बाधित के अन्तर्गत गीतों के उस स्वरुप को लिया गया है, जिसमें संगीत और पदावली का सौन्दर्य गीत के अनुकूल होते हुए भी उसमें किसी अन्तर्भावव्यंजक स्वरुप का अभाव है अथवा अतिअलौकिकता के समावेश के कारण रसपरिपाक में बाधा पडती है। ऐसे गीत अधिकांशत: रुप वर्णन आदि के अलंकार बहुल स्वरुपों में पाये जाते है। आरोपित के अन्तर्गत उन

गीतों को लिया गया है, किन्तु वे कथा प्रसंग के अंग होने के कारण स्वयं रचनाकार की अनुभूति की व्यंजना नहीं करते, वरन् किसी माध्यम द्वारा व्यंजित किये जाते है। शुद्ध गीति काव्य की संज्ञा उन अर्न्तवादी उद्‌गारों को प्रदान की गई है, जो स्वयं रचनाकार की व्यक्तिगत विह्वलता की व्यंजना करते हैं और जिनमें अलौकिक भावभूमि पर आकर पूर्णत: सहृदय संवेद्य हो जाता है।

वस्तुत: आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से शुद्ध गीति काव्य ही अधिक मर्मस्पर्शी और अन्तर को आन्दोलित करने वाला होता है। सूर, तुलसी, मीरा इत्यादि भक्त कवियों के आत्मनिवेदन परक पद इसी कोटि में आते हैं। आधुनिक रहस्यवादी कवियों के गीति काव्य में अंह भाव की प्रधानता होने से उतम पुरुष में ही कवि अपनी भावना की अभिव्यक्ति करता है। तुलसी की इस उक्ति में सभी भक्त हृदयों की दीनता का आभास मिलता हैं–

माधव मो समान जग माँही

सब विधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन विषय कोउ नाहीं।

विनयपत्रिका

२. गेयता या संगीतात्मकता : संगीतात्मकता या लयात्मक विधान गीत के स्वरूप को निर्धारित करता है। गीति काव्य हृदयतंत्री का स्वाभाविक उद्रेक है, अतएव गेयता उसका अनिवार्य तत्व है, पाश्चात्य आलोचक **एडगर एलिन पो** तो काव्य मात्र के लिए गेयता या संगीत को आवश्यक मानता है. उसने लिखा है – **' म्यूजिक, ह्वैन कम्बाइण्ड विद ए लैजरेबिल आउडिया इज पोइट्री।'** अर्थात संगीत, जब आनन्दमय विचारों से संयुक्त होता है, तब वह काव्य कहलाता हैं। गीति काव्य के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें शास्त्रीय संगीत के लिए आग्रह हो, हृदय के तारों की नैसर्गिक झंकृति ही ऐसा स्वर विधान करती है कि वह स्वत: ही गेय हो जाता है. काव्य में अभिव्यंजना हेतु शब्द साधना अपेक्षित है, किन्तु गीतिकाव्य में शब्द साधना के साथ–साथ स्वर साधना भी अनिवार्य है। संगीत में केवल आरोह–अवरोह के द्वारा भावानुभूति कराई जा सकती है, किन्तु गीति काव्य में संगीत के स्वर–माधुर्य के साथ–साथ अर्थ–गाम्भीर्य का भी संतुलित समन्वय अपेक्षित है। भक्त कवियों के उद्‌गार स्वर–साधना का संगम पाकर उत्कृष्ट गीतिकाव्य बन गये. जहाँ शास्त्रीय संगीत को गीतिकाव्य का आधार बनाया जाता है, वहाँ भावों और कालों के अनुरुप ही रागों का विधान किया जाता है। जैसे तुलसी ने ही रामजन्मोत्सव का वर्णन असावरी और जैतश्री में, रूप वर्णन कान्हरा और केदार में, भक्ति एवं करुणा को सोरठा में, विरह वेदना को विलावल और धनाश्री रागों में व्यक्त किया है।

हिन्दी में गीति काव्य और प्रगीत काव्य एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते है, किन्तु संगीतात्मकता के आधार पर डॉ. आशा किशोर दोनों को भिन्न मानती है, उनका मत है – ' गीतिकाव्य में शास्त्रीय संगीत का आधार होता है। प्रगीत का सांगीतिक आधार शब्दों की योजना पर निर्भर होता है. गीतिकाव्य में आन्तरिक संगीत के साथ ही शास्त्रीय प्रणाली पर राग–रागनियों का संयोजन होता है। गीतकाव्य प्रगीतात्मक होता है, पर सभी प्रगीत गीतिकाव्य नहीं है. गीतिकाव्य की प्रभविष्णुता संगीत के कारण नहीं, संगीतात्मक अभिव्यंजना के कारण होती है। उनके इस मत में अर्न्तविरोध सा प्रतीत होता है। एक वाक्य में वे कहती है कि– गीतिकाव्य में आन्तरिक संगीत के साथ ही शास्त्रीय प्रणाली पर राग–रागनियों का संयोजन होता है और दूसरे वाक्य में वे कहती हैं कि गीतिकाव्य की प्रभविष्णुता संगीत के कारण नहीं। क्या दोनों वाक्यों में अभिव्यक्ति विचार एक ही है? उनका मत भी पूर्णत: गीत व प्रगीत में भेद स्थापित नहीं करता. उनके अनुसार तो महादेवी के भावनात्मक गीत प्रगीत है और निराला की गीतिका के शास्त्रीय संगीतबद्ध गीत गीतिकाव्य हैं, किन्तु ऐसा नहीं है. वस्तुत: गीतिकाव्य में स्वत: स्फूर्त गेयता होती है, शास्त्रीय संगीतीत्मकता अनिवार्य नहीं, हो तो भी वर्ज्य नहीं. स्वर–विधान से गेयता स्वत: ही उत्पन्न हो जाती है.

३. भावान्विति : गीतिकाव्य भाव की प्रवेगपूर्ण स्थिति का परिणाम है। उसमें मंथरता नहीं उन्तेजना होती है। अतएव गीतों मे एक ही भाव अपनी पूर्ण मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति पाता है। प्राय: मूल भाव प्रथम पंक्ति में ही केन्द्रित होता है, शेष गीत में उसी का पल्लवन किया जाता है. भाव की एकनिष्ठता, केन्द्रीयता तथा संतुलित सीमा उसे तीर की भाँति तीखा बना देती है। इसलिए गीतिकाव्य में कथात्मकता एवं इतिवृत के लिए अवकाश नहीं है। प्रबन्ध काव्यों में भी गीति का प्रयोग उसी समय होता है, जब किसी पात्र का कोई भाव अपनी तीव्रता के कारण उद्वेलित होकर स्वरलय में अभिव्यक्त हो उठता है। भाव की एकान्विति से गीतिकाव्य में मार्मिकता और प्रभाव की अचूकता आती है। यथा महादेवी की इस गीत पंक्ति में आत्म–विश्वास, दृढता और अमर आंकाक्षा की अभिव्यक्ति हुई है–

''पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला
और होंगें चरण हारे
अन्य हैं जो लौटते देश शूल को संकल्प सारे
दृढ व्रती निर्माण उन्मद, यह अमरता नापते पद।
बाँध देंगें अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ण–बेला।''

४. अनुभूति की तीव्रता : गीतिकाव्य भावावेग की स्वाभाविक परिणिति है। वह हृदय से निकलकर हृदय को प्रभावित करता है। अतएव चिन्तन, मनन, चरित्र-चित्रण, इतिवृत एवं सिद्धान्त निरुपण के लिए उसमें स्थान नहीं है। उसमें भावना का अविरल प्रवार अपेक्षित है। डॉ. नगेन्द्र का विचार है कि- 'जब कभी आत्मा भाव की अग्नि से पिघल कर बहने को हुई है, उसके ताप से वाणी भी द्रवीभूत हो गई है और भाव ने गीत का रूप धारण कर लिया है। अतएव जब-जब हमारे जीवन में भावना का प्राधान्य हुआ है, जब-जब हमारा जीवन दर्शन अधिक व्यक्तिपरक या भावपरक हुआ है, काव्य मे गीति का महत्व बढ गया है। गीत में अनुभूति सम्पन्न तीव्र भाव बोध की मुक्त अभिव्यक्ति निहित है।

हृदय की तरलतम अभिव्यक्ति होते हुए भी गीतिकाव्य बुद्धि और कल्पना से पूर्णतया रहित भी नहीं है। तीव्र अनुभूति अभिव्यक्ति पाकर गीत के रूप में फूट अवश्य पडती है, किन्तु बुद्धि उसे संतुलित और सुनिश्चित रूप देती है और कल्पना उसमें रंग भरती है। मूल-भावना को वैविध्य से सजाने का कार्य कल्पना ही करती है, किन्तु बुद्धि और कल्पना का काम इतना गौण होता है कि भाव-धारा में छिप जाता है। यथा:-

''प्राण मैं हूँ देह केवल, तुम इसी की साँस हो।
दूर हो जितनी बसी, उतनी हृदय के पास हो।
ढो रहा हूँ भार सा बेबस बिरसता को संजोए
भ्रान्त मन औ क्लान्त तन ले शान्ति के सब साज खोए
मैं यहाँ हूँ शून्य जैसा दूर जब उच्छ्वास हो।''

शंख और वीणा, पृष्ठ-७६

५. संक्षिप्तता : भावान्विति, प्रभाव की तीव्रता, गेयता एवं सम्प्रेषण के लिए गीत की संक्षिप्तता वांछनीय है. संक्षिप्तता से गीत में निहित अनुभूति अखण्ड एवं प्रभावपूर्ण रहती है। वह श्रोता या पाठक के हृदय पर त्वरित तथा सीधा प्रभाव डालती है। विस्तार से अनुभूति की अखण्डता में व्याघात उपस्थित हो जाता है तथा भावना के विश्रृंखल होने, आवेग के क्षीण होने एवं गेयता में शिथिलता आने की आंशका हो जाती है अत: संक्षिप्तता अपेक्षित है। गीत का सम्बन्ध स्वर से आरोह-अवरोह की सुशमित गति अधिक देर तक बनी रह सकती है। रस की धारा भी संक्षिप्तता में ही वेगवती होती है। इसी से वर्णनात्मक लम्बे गीत गाये नहीं जा सकते।

६. भावानुकूल भाषा : गीतिकाव्य का सम्बन्ध स्वर-साधना से होने के कारण भाषा में भी भावानुकूलता एवं मार्दव अपेक्षित है। हृदय की कोमलतम वृत्तियों से सम्बन्ध होने के कारण भाषा में माधुर्य और लालित्य होना वांछनीय है। गीतिकाव्य में भी भावों का जैसा तरल प्रवाह होता है, उसी के अनुरूप भाषा भी सरस, गतिमती और स्वाभाविक होनी चाहिए। शब्द-मैत्री, चित्रात्मकता, लाक्षणिकता एवं व्यंग्यात्मकता द्वारा भाषा में भावानुकूलता का समावेश होता है। गीतिकाव्य की भाषा भी भाव के समान स्वत:स्फूर्त होती है, भाव के पीछे भाषा अपने आप प्रवहमान दृष्टिगत होती है। पंत जी के इस गीत में संगीतमय शशब्दों, सार्थक विशेषणों और ध्वनिमूलक पदों के प्रयोग से प्रात:कालीन सौन्दर्य मुखरित हो उठा है-

''अरुणोदय नव, लोकोदय नव।
रजत झांझ से बजते तरु पल,
स्वर्णिम निर्झर झरते कल-कल,
मसृण तुम्हारे पग-पायल,
यह भू जीवन शोभा का उत्सव।''

रश्मिबंध, पृष्ठ - ७५

निष्कर्षत: हम गीतिकाव्य के स्वरूप का निर्धारण इस प्रकार कर सकते हैं- कवि की सप्रानुभूति से उद्रिक्त तीव्र भाव संयमित एवं संमजित होकर हृदयतंत्री के तारों को ध्वनित करता हुआ संगीत की मधु लहरी में ललित पदावली के माध्यम से अभिव्यक्त होकर काव्य का स्वरूप धारण करता है। मन से संयुक्त होने के कारण गीत सौन्दर्य बोध का चित्रण तीव्र होता है। अपनी स्वच्छन्द एवं लघु प्रकृति के कारण गीत आकार में लघु होते है। गीत की रचना पद्धति भाषा शिल्प के अनुकूल वातावरण से संयुक्त रहती है।

१.१० गीत का युगानुरूप विकास :

गीत की इस अनन्त शक्ति के कारण जब भी सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जाती है, मानवीय चेतना को विनाशकारी दिशा से विरत कर कल्याणकारी दिशा में मोडने का प्रयत्न होता है तब गीत का स्वरूप नई करवट बदलता है। समाज का कायाकल्प करने और उसे नई दिशा देने के लिए गीत को नयी भावभूमि, नये आयाम, और यहाँ तक कि नयी शैल्पिक सुन्दरता तक दी जाती है। इस प्रकार मानव समाज की रचना धर्मी विकास-यात्रा में उसके सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ साहित्यिक विकास

की यात्रा भी सतत् जारी रहती है। फलत: वैदिक गीत से संस्कृत के लौकिक गीत- पालि अपभ्रंश आदि के गीत- भक्तिकालीन गीत- रीतिकालीन गीत- द्विवेदी युगीन गीत- छायावादी गीत और स्वातन्त्रयोत्तरी गीत का स्वरूप पर्याप्त भिन्न हैं; किन्तु फिर भी गीत के मूल तत्व आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्ति, संगीत आदि सर्वत्र: समान रूप से समुपस्थित है। सार यह है कि गीतिकार की लोकमंगलकारी रचना-चेतना जब भी सामाजिक विषमताओं और विकृत व्यवस्थाओं के विरोध में जनहित साधन के मंगल विधान के लिए स्वर बुलन्द करती हैं तब वह जन भावों के सम्यक् आन्दोलन- उद्वेलन के लिए गीत का पुनर्संस्कार करती है, उसे युगोपयोगी बनाती है। गीत का आश्रय लिये बिना मानवीय संवेदना केा नया स्पंदन प्रदान करना अत्यन्त कठिन होता है। अत: गीत नवसृजन का पुरश्चरण होता है।

पद्य साहित्य का गीतमय दीप अपनी समुज्जवल प्रभा से अन्तश्चेतना को निर्मल और निर्भ्रान्त बनाता है। सत्य के अभिज्ञान की शक्ति देता है तथा संघर्ष के लिए ऊर्जा प्रदान करता है। यह कहना गलत होगा कि स्वातन्त्रयोत्तर पद्य साहित्य में प्रभावपूर्ण गीतिकाव्य का नितान्त अभाव है किन्तु इतना अवश्य है कि साहित्य के क्षेत्र में राजनीति द्वारा षडयन्त्र पूर्वक स्थापित पोषित शिविरों ने सत्ता समर्थित प्रचार माध्यमों के बल पर उक्त गीतिकाव्य को वैसे ही ढक दिया गया है जैसे कि कुहासा सूर्य को ढक लेता है। निश्चय ही कुहासे की सघन पर्तो में छिपा सूर्य शक्ति सम्पन्न होने पर भी अपनी ऊष्मा और प्रकाश से जनजीवन को लाभान्वित नहीं कर पाता; वह उपस्थित रहता है पर जनजीवन शीत से ठिठुरने को विवश हो जाता है। यही स्थिति पाश्चात्य साहित्यानुकरण प्रेरित विविध काव्यान्दोलनों के अविचारित आक्रमणों से संत्रस्त स्वातन्त्रयोत्तर गीतिकाव्य की रही है। उसके उपस्थित और जीवन्त रहते हुए भी उसके मरण की घोषणाएँ की गई तथा उसे समीक्षा क्षेत्र में हाशिए पर रखा गया। फलत: साहित्य की लोकमंगलकारी भूमिका बाधित हुई।

जैसे सूर्य अधिक समय तक बादलों के पीछे नहीं रहता और ढकी हुई अग्नि अपने समस्त आवरण भस्म कर प्रकट हो जाती है ठीक वैसे ही स्वातन्त्रयोत्तर युगीन पद्य साहित्य की गीति अभिव्यक्ति भी नयी शक्ति लेकर साहित्य के प्रांगण में पुन: प्रकट हुई है और प्रसन्नता की बात यह है कि गीत के मरण की घोषणा करने वाले भी अब उसकी शक्ति- सत्ता को स्वीकार रहे है। भवानीप्रसाद मिश्र, रामेश्वर शुक्ल अंचल, नरेन्द्र शर्मा, हरिवंशराय बच्चन, रामावतार त्यागी, कुवँर बैचेन आदि असंख्य गीतकारों का कृतित्व सामने आया है और डॉ. सुरेश गौतम, डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर' आदि गीतसमीक्षकों ने गीत की सत्ता को साहित्य में पुन: प्रतिष्ठित किया है। गीत की इस पुन: प्रतिष्ठा का वास्तविक आधार

उसकी लोकमंगलकारी रचना चेतना और प्रभावोत्पादिनी शक्ति है। इस विकास-यात्रा में जिन गीतिकारों ने प्रतिकूल परिवेश के आघात-प्रतिघात सहकर भी गीतयात्रा को अविराम गति दी है, वे सब साधुवाद के पात्र है, क्योंकि उन्हीं की निस्पृह एकान्त काव्य साधना का सुफल वर्तमान गीतिकाव्य के विराट-वैभव में प्रत्यक्ष है।

नयी कविता की अधोमुखी धारा के अकविता जैसे प्लावन प्रवाह में हिन्दी कविता के वास्तविक तत्वों को सुरक्षित रखने एवं सवंर्द्धित करने में जिन एकान्त साधकों ने अपना जीवन समर्पित किया है उनमें श्री चन्द्रसेन विराट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंनें अपनी पाँच दशकों की यात्रा में प्रयत्नपूर्वक हिन्दी गीतिकाव्य को संरक्षित एवं सवंर्द्धित किया है।

१.११ उपसंहार :

प्रासंगिकता और सृजनशीलता, प्रतिबद्धता और अजनबीपन, जादुई और क्रान्तिकारी, यथार्थ और अयथार्थ, तात्कालिक और मिथकीय, सपाट और काव्यात्मक के तनाव में आज के गीत हमारे समय का मार्मिक साक्ष्य बन चुकी है। उसके अनुभव संसार और स्थापत्य का सामना हमें आज की जटिल स्थितियों कें प्रति जागरूक बना सकता है। साहित्य की भूमिका एक अर्थ में साहित्य तक सीमित है और दूसरे अर्थ में उसी की क्षमता के आधार पर उसका अतिक्रमण है।

अनुकरण और अनुभव में फर्क करने की माँग समकालीन काव्य हमसे करता है। यह निर्विवाद है कि वस्तुओं से आज की गीत विधा में व्यक्त और अव्यक्त जो टकराहट पैदा हुई है, वह रचनात्मक समझ और भाषा का एक बिल्कुल नया अनुभव है। यह सिर्फ कुशलता के कारण नहीं-सवेंदनात्मक शिराओं पर एक नये दबाव के कारण भी है।

प्रस्तुत अध्याय में साहित्य के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए सत्साहित्य को परिभाषित किया गया है। साथ ही साहित्य समाज का दर्पण है इस तथ्य को सार्थकता प्रदान करते हुए समाज एवं साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। साहित्य समाज की चेतना में साँस लेता है। वह समाज का परिधान है, जो जनता के जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण के ताने-बाने से बुना जाता है। उसमें विशाल मानव जाति की आत्मा का स्पन्दन होता है। वह जीवन की व्याख्या करते हुए उसे जीवनदायी शक्ति प्रदान करता है। साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है।

साहित्य सृजनकर्ता साहित्यकार की प्रभावी भूमिका को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी साहित्य के विभाजन, गद्य की अपेक्षा पद्य के वैशिष्ट्य, कविता के उद्‌भव के साथ ही गीति काव्य के स्वरूप, उत्पति एवं विकास को व्याख्यायित करते हुए उसकी परिभाषा एवं विशेषताओं को विस्तार से वर्णित किया गया है।

❑❑❑

• अध्याय - २ •
छायावादोत्तर हिन्दी गीतों में समकालीन दृष्टिकोण

२.१ प्रस्तावना :

वस्तुत: गीत ने अपने स्वस्थ दृष्टिकोण के बलबूते पर जहाँ एक ओर रूढियों का विरोध किया है, वहीं दूसरी ओर परम्परा के विकास में योगदान देकर आधुनिक युग चेतना के अनेक बिन्दुओं को समर्थता से उकेरा है। किन्तु भाव की महत्ता यहाँ सर्वोपरि रही हैं। इसी के परिवेश में विषय और शिल्प को निश्चित साँचें में न ढालकर ताजे और मुक्त वातावरण में संयुक्त करते हुए गीत ने नवगीत की संज्ञा ग्रहण की। यद्यपि नवगीत नाम नयी कविता की तर्ज पर ही रखा गया था, पर अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण वह निरन्तर सम्पन्न होकर स्थापित होता चला गया। इसलिए भवानीप्रसाद मिश्र को स्वीकार करना पडा कि नयी कविता की अपेक्षा नवगीत का क्षेत्र अधिक सम्पन्न हैं। कविता से गीत की एकात्मकता एवं उसकी सामर्थ्य को व्यंजित करते हुए श्री विद्यानिवास मिश्र लिखते है कि –जहाँ तक आधुनिक बोध, प्रत्यग्र और गहरे अनुभव, अभिव्यक्ति की असंदिगधता और बौद्धिक सम्पृक्तता का प्रश्न है, हिन्दी गीतिकाव्य नई कविता की इन तमाम उपलब्धियों से कृतकृत्य सिद्ध हुआ है और इस प्रकार नई कविता और हिन्दी का इधर का समर्थ गीतिकाव्य समानान्तर नहीं, एक है। नई कविता एक सामान्य संज्ञा हैं, गीत उसका एक विशेष प्रकार।

१. **नव गीत :** वस्तुत: नवयुग की प्रवृतियों को आवृत करना गीत की नव्यतम् उपलब्धि है। आधुनिकता के परिवेश में अपनी निजता को मुखर कर गीत ने नवगीत का रूप ग्रहण किया। यद्यपि नव का विशेषण ग्रहण करना गीत के लिए आवश्यक नहीं था– क्योंकि गीत की प्रवृति ही नवता से सम्बद्ध है, तथापि जब साहित्य की अनेक विधाएँ विशेषत: कविता अनेकानेक आन्दोलनों से प्रभावित होकर अनेक प्रकार की रूप भंगिमा और नाम ग्रहण कर रही थी, तब यदि गीत ने स्वंय को नवगीत बना लिया,तो क्या गलत किया? अस्तु एक ओर जहाँ गीत अपनी परम्परा का पालन निष्ठा से कर रहा है, वहीं प्रगतिशीलता में वह किसी से पीछे नहीं है। उसकी गति हर युग के समानान्तर रही है। बौद्धिकता की रागाात्मक अभिव्यंजना कर उसने आधुनिक जीवन के स्पंदन को मुखर किया है, नये संस्कारों को ग्रहण करती हुई नई जीवन पद्धति को अपने से जोडा है और नये प्रयोगों की चेतना से संयुक्त होकर आधुनिक

जीवन बोध को व्यक्त करने में अपनी भूमिका निबाही है। इस तथ्य के समर्थन में यहाँ कुछ मत देना असंगत नहीं होगा।

डॉ. नन्दकुमार राय ने लिखा है कि- ''नया गीत आधुनिक भाव बोध को अभिव्यक्त करता है, क्योंकि यह नवीन सामाजिक चेतना का सहज परिणाम है।''

श्री शलभ रामसिंह के मत से - आधुनिक जीवन की तमाम विसंगतियों और कुरूपताओं के बीच नये और स्वाभाविक जीवन सम्बन्धों की खोज नये गीत की एक बहुत ही बडी उपलब्धि हैं।

इसी क्रम में पाँच जोड बाँसुरी की भूमिका में **श्री चन्द्रदेव सिंह** ने नवगीत की विशिष्टता तथा व्यापकता निरूपित करते हुए लिखा है कि आज का गीत न तो लोक जीवन से विमुख है, न नागरिक जीवन से उपेक्षित, न तो राष्ट्र की भौगोलिक सीमा में वह बद्ध है, और न अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों से तटस्थ। नया गीतकार अपने परिवेश तथा अस्तित्व के प्रति व्यापक रूप से सजग व सतर्क हैं। परिवेश और युग जीवन के प्रति उसकी यही सजगता उसके स्वर की नवीनता के लिए उत्तरदायी है।

नवगीत ने परिवर्तित दिशा से पहचान करते हुए प्रयोगों के नये स्वर को स्पर्श किया हैं, किन्तु अपनी जमीन नहीं छोडी हैं। प्रयोगों के अत्यधिक आग्रह के कारण नई कविता कहीं-कहीं हास्यास्पद या विकृति की अवस्था तक पहुँच गई है, किन्तु नवगीत सहज प्राकृत रूप में बने रहे हैं। इसका कारण यही है कि बौद्धिकता का आग्रह नई कविता में अति की सीमा को पार कर गया हैं, जबकि नवगीत ने उस बौद्धिकता को भावना से सम्बद्ध कर एक संतुलन बनाये रखा है। इसलिए नवगीत आधुनिक परिवेश में भी हृदय के निकट महसूस होते हैं, जबकि नई कविता सहज अर्थ-व्यंजना से दूर रहकर प्राय: दिमागी कसरत कराती हैं।

वस्तुत: नवगीत ने जिस सौन्दर्य बोध को खोजा है, उसमें पलायन, विकृति एवं अश्लीलता नहीं है बल्कि एक स्वस्थ आधुनिकता है- जो सामाजिक संचेतना को पूरी संजीदगी से ग्रहण करती हैं और विचार तथा भाव व्यंजना के नये प्रयोगों के माध्यम से सटीक रूप में अभिव्यक्ति करती हैं। रागात्मक संस्पर्श, नवीन जीवन मूल्य और भाव-बोध, शिल्प की मौलिकता और अपनी सनातन ताजगी के साथ नवगीत अपने दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रहा है।

नवगीत के प्रस्थान बिन्दु से लेकर अद्यावधि उसे उत्कर्ष देने वालों में शंभुनाथसिंह, केदारनाथसिंह, धर्मवीर भारती, माहेश्वर तिवारी, ठाकुर प्रसाद सिंह, वीरेन्द्रमिश्र, सोम ठाकुर, उमाकान्त मालवीय, बालस्वरूप राही, ओम प्रभाकर, कुँवर नारायण, रामदरस मिश्र, रमानाथ अवस्थी, नईम, चन्द्रसेन विराट,

अनूप, अप्रशेष आदि प्रमुख गीतकार महत्तवपूर्ण हैं। नवगीत अपने समय की सहज माँग हैं, यह एक चुनौती भी है।

२.२ छायावादी हिन्दी गीतकार :

इस काल में प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने गीत रचना की। निराला ने भाव और अभिव्यंजना की खोज की। उनके गीतों में शब्द, नाद और सौन्दर्य तीनों का अद्‌भुत समन्वय है। उनकी रचनाओं में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के भाव मिलते है। पन्त अभिव्यंजना की शक्ति और सौन्दर्य विशेषकर प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी रहे। पन्त ने विशेषत: सौन्दर्य का ही गान किया। महादेवी ने सत्याधारित करूण रस को आधार बनाकर प्रगीत के क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य किया। प्रसाद इतिहास और कल्पना का समन्वय कर नाद शिल्पी के रूप में प्रकट हुए है।

२.३ आधुनिक काल में छायावादोत्तरकाल तक गीत की विकास यात्रा :

अ) आधुनिक काल : जयदेव और विद्यापति से श्रृंगारित हिन्दी की गीत परम्परा भक्तिकाल में सूर, मीरा, तुलसी, और कबीर आदि से विषय वैविध्य पा कर फलती रही और आधुनिक काल में विकास के अधिकाधिक अवसर सहेज कर शीर्ष बन कर रह गई। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद तथा इसके समानान्तर चलती स्वच्छन्द प्रगतिशील धारा के अर्न्तगत मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी, दिनकर, बच्चन, अंचल, सुमन, नरेन्द्र श्शर्मा, नीरज आदि ने गीत को अनेकानेक आभूषणों से अलंकृत किया और श्रृंगाार तक सीमित उसकी झंकार समय तथा परिस्थिति के अनुसार नई चेतना को आवृत करती नित नये नव रूप में नये राग से युक्त होती है।

आधुनिक काल का हिन्दी कविता के विकास में विशेष महत्व है। व्यक्ति स्वांतत्रय, अतीत गौरव के प्रति आस्था तथा राष्ट्रीय चेतना अधिक रही है। फलत: जनजागरण का यह काल हिन्दी गीतिकाव्य के प्रसार के लिए अधिक उपयुक्त है। भारतेन्दु ने एक ओर विद्यापति, चण्डीदास, सूर, तुलसी की परम्परा में राधा–कृष्ण के आलम्बन लेकर ब्रजभाषा में भक्तिपूर्ण स्फुट पद लिखे है, तो दूसरी ओर राष्ट्रीयपरक कविताओं की रचना की है। इस युग के लेखकों ने गद्य लेखन जैसे महत्वपूर्ण काव्य का शुभारम्भ किया। इस काल में राष्ट्रीयगीत परम्परा श्रीधर पाठक ने प्रारम्भ की।

ब) द्विवेदी युग : यह देश प्रेम, नीतिपरक, आचारशीलता, इतिवृतात्मकता और भाषा के परिष्कार का युग रहा है। इस युग की कविता, समाज सेवा, पुरातन प्रेम, समाज सुधार जैसी स्थितियों से

पूर्ण रहा है। नाथूराम और शंकर शर्मा की पंच पुकार, गयाप्रयाद शुक्ल सनेही के अंहिसा संग्राम, मैथिलीशरण गुप्त के सुकवि कीर्तन, रामचरित उपाध्याय के कन्हैया, माधव श्शुक्ल तथा मुकुट बिहारी पाण्डेय की स्फुट कविताएँ इसके उदाहरण है। किन्तु इस युग में विषय की एकरूपता, अभिव्यक्ति की स्थूलता, वर्णनात्मकता और भाषा की रूक्षता के कारण इसमें भावप्रवणता की कमी रही हैं इसलिए इन्हें पद्य निबन्ध कहा जाता है।

स) छायावादी काल : कला की दृष्टि से विचार करने पर छायावादी काव्य की विशेषता चित्रमूलक ध्वनिपूर्ण भाषा, स्वछन्द छन्द योजना, लक्षणा मूलक भाषा, सुकुमार कल्पना, मूर्त का अमूर्त और अमूर्त का मूर्त विधान, विशेषण विपर्यय, समासोक्ति और अर्थान्तर न्यास की शैली आदि है।

यह काल द्विवेदी युगीन विकास की कडी न होकर तत्कालीन सामाजिक प्रभावों से उत्पन्न एक अलग काव्य संस्कार है। वैयक्तिकता, आत्मलीनता, रहस्यवाद, के साथ-साथ स्पष्ट सामाजिकता और मानववाद के दर्शन छायावादी कविता में होते है। छायावाद पलायन का वाद नहीं है, बल्कि नैसर्गिक जीवन की आंकाक्षा को जीता है। इसकी गीतिश्शैली पर एक ओर लावनी, कजली, दादरा, वीरहा जैसे लोकगीतों का प्रभाव है तो दूसरी ओर इंग्लैण्ड के रोमांस युग की लिरिक शैली की छाप है।

ड) छायावादोत्तर काल : निराला और पंत जैसे कवियों ने संक्रमण काल में भी खुद को सक्रिय रखा। वे बदलते समय की माँग को पहचानकर उसी रास्ते चलने लगे। छायावादी शैली को आगे तक विकसित करने में प्रमुख रूप से जानकी वल्लभ शास्त्री, विद्यावती कोकिल, सुमित्राकुमारी सिन्हा, गोपाल सिंह नेपाली आदि हैं।

आलोचकों का मानना है कि छायावादी कविता का शिल्प पश्चिमी प्रभाव से युक्त था। १९३६ के बाद छायावादी कविता के रोमानी तेवर लुप्त हो गए और प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। प्रगतिशील चेतना जीवन के यथार्थ से जुडी; पर धीरे-धीरे प्रगतिशील चेतना अरविन्द दर्शन के प्रभाव एवं भक्तिवादी दृष्टिकोण और छायावादी लाक्षणिकता से ऊबने लगी। वे कला और साहित्य को पुराने साँचें से निकालकर नये रूप में ढालना चाहते थे।

२.४ छायावादी हिन्दी गीतों की विशिष्टताएँ :

१. वैयक्तिकता

२. प्रकृति सौन्दर्य और प्रेम की व्यंजना

३. श्रृंगाारिकता

४. रहस्यानुभूति

५. वेदना और करूणा की विवृति

६. मानवतावादी दृष्टिकोण

७. नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण

८. स्वच्छंदतावाद

९. देश प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना

१०. प्रतीकात्मकता

११. चित्रात्मक भाषा और लाक्षणिक पदावली

१२. गेयता

१३. अंलकार विधान

१४. स्निग्धता एवं सरसता

निष्कर्षत: भावाभिव्यक्ति, भाषा की तरलता, सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति क्षमता की तमाम ऊँचाइयाँ, विस्तार, गहराइयाँ स्पर्शकर और उन्हें लाँघते हुए छायावादी गीत निरन्तर आगे बढते हुए छायावादी सोच विचारों के आन्दोलन, कथ्य और शिल्प के अनेकानेक आयामों और मापदण्डों को स्थापित करते चले गये। इस काल के गीतों ने समय का व्यापक कैनवास, स्थल के विशिष्ट मकाम गीत विधा को प्रदान किया।

विषय विस्तार के भय से यहाँ इन विशेषताओं का विस्तृत रूप से विवेचन नहीं किया गया है।

२.५ समकालीनता से तात्पर्य :

जैनेन्द्र केमार का कथन है कि-'' समकालीन साहित्य वह है, जो साहित्य न केवल उस युग मे पथ-निर्देश एवं पथ प्रकाशित करता है, जब वह रचा गया, अपितु वह युगों-युगों तक तत्सम् कार्यनिर्देश करता रहे, यही उसकी उपादेयता है। कोई भी रचना अपने रचना काल से लेकर चिरकाल तक प्रकाश का स्त्रोत बना रहे, यही उसकी समकालीनता होगी।'' इसके लिए आवश्यक है कि कवि लोक को सामाजिक, राजनैतिक दृष्टि से जागृत कर एक संतुलित समाज की स्थापना का मार्ग-निर्देश करे।

समसामयिक चिन्तन द्वारा परिवर्तनशील जीवन, समाज एवं प्रकृति और तदनुरूप सृजित साहित्य की ऊर्जाशक्ति का जीवन्त स्रोत है। रचनाकार लोकजीवन से जुडकर ही समाज सापेक्ष साहित्य का प्रणयन

कर सकता है। गीत में लोक चेतना आम जनता की पक्षधर होकर विकसित होती है। यह विकास लोक –जीवन से लोक–चेतना और लोक–चेतना से लोककल्याण एवं लोकजागरण की निश्चित दिशा की ओर होता है। रचनाकार को लोक–चेतना के निर्वहन के लिए समकालीन सामाजिक राजनीतिक, विसंगतियों से निस्तार पाने हेतु कविता में लोककल्याण की अभिव्यक्ति की आवश्यकता रहती है। इसमें जनविरोधी भावनाओं को अनावृत्त करना, आम आदमी के जीवन की असंगतियो का चित्रण, रूढियों एवं निरर्थक मान्यताओं का खण्डन करते हुए विपक्षी सत्ता द्वारा किये जा रहे अन्याय के विरूद्व लोकशक्ति को संगठित एवं जागृत करना कवि का आवश्यक कर्म बन गया है। कवि लोक को सामाजिक, राजनैतिक दृष्टि से जागृत कर एक संतुलित समाज की स्थापना की बात करता है।

२.६ आधुनिकता बनाम समसामयिकता :

सम्प्रति साहित्य की दृष्टि से सामान्यत: आधुनिकता बनाम समसामयिकता में भिन्नत्व प्रतिभासित नहीं होता. विगत साहित्य को समसामयिकता के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है, क्योंकि साहित्यकार अपने युग की सृष्टि होता हैं एवं उसके साहित्य में उसका समसामयिक युग किसी न किसी रूप में प्रतिबिम्बित अवश्य होता है। अपने युग से वह कितना ही उदासीन एवं निरपेक्ष रहने का प्रयास करे, किन्तु वह उससे सर्वथा असम्पृक्त नहीं रह सकता; क्योंकि वह अपने युग के वायुमण्डल में साँस लेता है, उसका सामयिक वातावरण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसकी हृदयतंत्री के तारों को झंकृत करता है, उससे जो स्वर निकलता है, वही उसका साहित्य होता है। अत: उसमें समसामयिकता अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। जिस युग में कबीर का जन्म हुआ, उस युग में बिहारी नहीं हो सकते थे तथा जिस युग में भारतेन्दु का अवतरण हुआ था; उस युग में पन्त की कल्पना कला अपना अभिनय नहीं व्यक्त कर सकती थी। समय अपनी विभूति को अपने गोद में जन्म लेने वाली प्रतिभा के माध्यम से स्वत: ही उद्भासित कर देता है। फलत: प्रागैतिहासिक युग के कथानक में भी साहित्यकार का युग झांकता प्रतीत होता है। अपने आराध्य राम की भक्ति में आकण्ठ मग्न तुलसी के रामचरितमानस में भी मुगलकालीन भारत की स्पष्ट झलक मिलती है तथा खण्ड प्रलय के अनन्तर मानव की अभिनव सृष्टि के निर्माण से सम्बन्धित कथानक पर आधारित कामायनी में भी प्रसाद का युग स्पन्दित होता हुआ दृष्टिगत होता है। यही नही अपितु उसमें तो प्रज्ञाचक्षु आलोचक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं साम्यवादी विचारधारा का प्रखर उन्मेष भी देखने लगे है। अतएव साहित्य में समसामयिकता स्वत:सिद्ध है।

किन्तु आज समसामयिकता और आधुनिकता को एक ही अर्थ का वाचक नहीं माना जाता हैं। समसामयिकता में नूतन युग पुरातनता के निर्मोक में झांकता हुआ प्रतीत होता है, उसमें यदि नवयुग का स्पन्दन है भी, तो वह जरा जर्जरित सा लगता है, उसमें यदि नवीन भावनायें और विचारधारायें प्रवहमान है भी तो उनमें गतानुगत धारा के मिश्रण का आभास मिलता हैं। उसकी अभिव्यक्ति का स्वर यदि युग की प्रतिध्वनि को अपने में समेटे हुए है, तो भी उसमें आरोह से अवरोह की ओर उन्मुख जैसी गति सुनाई पडती है। उससे जिस अर्थ की व्यंजना होती है, वह वहीं है, जो पहले थी और सम्भवत: आगे भी रहेगी।

यन्त्रों द्वारा निर्मित उपकरणों से प्राप्त भौतिक वैभव एवं ऐन्द्रिय सुखों की उपलब्धि की स्पर्धा में हम आत्मकेन्द्रित हो गये है। येन-केन-प्रकारेण अर्थ संचित कर भोग के साधनों को जुटाना हमारे जीवन का परम लक्ष्य बन गया हैं. फलत: समाज से हमारा उतना ही सम्बन्ध रह गया है, जितने से हमारे लक्ष्य की पूर्ति में सहयोग मिलता है. केवल व्यक्तियों में ही नहीं अपितु वैश्विक राष्ट्रों में भी यह धारणा बलवती हो रही है। परिणामस्वरूप जहाँ विज्ञान द्वीपों अपितु ग्रहों की दूरी को भी कम कर रहा है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तियों के मध्य दूरी को विस्तार दे रहा है. परस्पर अविश्वास, सन्देह, आशंका, भय एवं शोषण की प्रवृति बल पकड रही है। फलत: संत्रास, कुण्ठा, अवसाद, आत्मपीडन, निराशा, एकाकीपन जैसी भावनायें बलवती होती जा रही है। एक तरफ स्वतन्त्रता के नाम पर मनमानी, भोगलिप्सा तो दूसरी ओर भूख से छटपटाता वर्ग है; इन दोनों के मध्य है आज की दिशाहीन एवं लक्ष्यहीन युवा पीढी; जिसमें है भटकाव, अनास्था, ऊब, उदासी। इनकी अभिव्यक्ति वह उच्छृंखलता के माध्यम से करता है। समाज की इस विषमता को, यथातथ्य रूप से नग्न करके चित्रित करना आधुनिकता है।

आधुनिकता : आधुनिकता को परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता, आधुनिक बोध सबके अपने अपने है। प्रत्येक व्यक्ति एक द्वीप है, आधुनिकता रूपी नदी का। आधुनिकता में नयी गतिविधियों से समाज के नये जीवन मूल्य सृष्ट होते है। लेकिन समय विशेष के कारण आधुनिकता पुरातन हो जाती है इसलिए उसे निरन्तरता प्रदान करने के लिए सतत संशोधन की आवश्यकता है। सरिता के ठहरे हुए जल के समान स्थिर आधुनिकता दूषित हो जाती है। बीता हुआ कल यदि तात्कालिकपूर्ति के लिए समसामयिक हो सकता है, पर आधुनिक नहीं। आधुनिकता की कुछ अनिवार्य शर्ते है, पर समकालीनता की नहीं। इसलिए हर समकालीन आधुनिक भी हो, ये जरूरी नहीं पर उसे समकालिक होना आवश्यक है। कबीर अपने समय में आधुनिक भी थे और समकालीन भी पर आज वे पूरी तरह समकालीन होते हुए भी

आधुनिक नहीं है। यह तकनीकी अन्तर बहुत महीन है जैसे अभिमान और स्वाभिमान के बीच सूक्ष्म किन्तु गहरा अन्तर है।

समकालीन होना अपने युग सन्दर्भों में प्रासंगिक होना है। इसके साथ ही जो आधुनिक मूल्यों से भी जुडा हो वही समकालीन कविता का वाहक हो सकता है। समकालीनता ही वह तत्व है जिसके द्वारा आधुनिकता रूपाकार ग्रहण करती है और इस रूप में समकालीनता में परम्परा की जीवन्त धारा से विच्छेद नहीं होता। बल्कि हम उसका नवीनीकरण कर समृद्ध एवं विकसित करते है।'' आलोक भट्टाचार्या का नागपूर में राष्ट्रीय संगोष्ठी में दिया गया वक्तव्य।

आधुनिकता मूर्खता, अज्ञान, रूढि और अंधविश्वास का विरोध करती है। परम्परा के सचेतन अनुकूलीकरण और अपनाव से नहीं, यदि पाश्चात्यीकरण को कोई आधुनिक मानते है; तो वह पतित भूल कर रहा है– पाश्चात्य से भी सचेतन ज्ञान को अपनाना है, उसकी नकल को नहीं। छिन्न मूल्य आधुनिकता नहीं है।समकालीन बोध जुडाव की कविता है। अत: परम्परा जो रूढि बन चुकी है वह त्याज्य हैं हर हाल में, पर उसे नया रूप देकर आधुनिक बनाया जा सकता है।

विजयेन्द्र ने लिखा है कि – ''समकालीनता का अर्थ भौतिक रूप से जो घटित हो रहा है। मात्र उतना नहीं है बल्कि जो कुछ क्षतिग्रस्त है। उनकी पुर्नरचना की सृजनशील चेष्टाएँ और जीवन को समोन्नत तथा सुन्दर एवं मनोहारी बनाने की परिकल्पना ही उसी समकालीनता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

आधुनिकता वस्तुत: अनिश्चय की भूमिका पर खडी हैं. वह एक विचार प्रक्रिया है, जिसके मूल में मुक्ति की बदलती भावना है– व्यक्ति की मुक्ति की अर्थात् स्वच्छन्दता एवं स्वेच्छाचारिता से उन्मुक्त विलास की कामना, विचार के क्षेत्र में वह प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों से, नैतिक एवं श्शास्त्रीय सिद्धान्तों से, धर्मिक विधि निषेधों से मुक्त होकर नवयुग की माँग के अनुरूप मूल्यहीन मूल्यों को, मानहीन मानों को तथा मनमाने विचारों को वहन करती हुई चलती है। व्यवहार के क्षेत्र में आधुनिकता प्राचीन संस्कारों, पुरातन परम्पराओं, पुरानी रूढियों तथा आचार–व्यवहार से मुक्ति की घोषणा करती है. आधुनिकता तो स्मृति एवं अतीत से भी मुक्ति चाहती है. उसके समक्ष तो केवल वही क्षण है, जो जिया जा रहा हैं। उसके बीतने पर उसका महत्व समाप्त और आगत क्षण मूल्यवान हो जाता है। फलत: आधुनिकता में क्षणवाद की प्रतिष्ठा है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आधुनिकता को पुरातन काव्य रूप, प्रचलित छन्द, भाषा, परिष्कृत शैली शिल्प तथा अंलकृति के बन्धन स्वीकार्य नहीं है। फलत: तुकहीनता, गद्य–पद्य के विधानों से

निस्संगता, उलझी हुई भाषा, अपने नितान्त व्यक्तिगत प्रतीक आदि आधुनिकता के लक्षण है। सारांश यह है कि भाव, विचार, व्यवहार एवं अभिव्यक्ति से मुक्ति आधुनिकता है। उसमें नवीनता के लिए तीव्र छटपटाहट है।

आधुनिकता में विद्रोह का स्वर अत्यन्त मुखर है, किन्तु यह केवल विघटनात्मक ही नहीं अपितु सृजनात्मक भी है। इससे हमारे ज्ञान के क्षितिज का विस्तार हुआ है, हमें नव्य आलोक की प्राप्ति हुई है। उसने मानव की सफलता की घोषणा करते हुए जीवन के प्रति निष्ठा उत्पन्न की है। विकास के लिए साहस, उत्साह एवं आशा की ज्योति प्रकीर्ण की है।

२.७ गीत और नव परिवर्तन :

सन १९६० के आसपास गीत ने नये बौद्धिक परिवेश को भी अपनी भावात्मक सीमा में समेटना शुरू कर दिया। यद्यपि परिवर्तन के ये चिन्ह आधुनिक काल के प्रारम्भिक चरण से ही दृष्टिगत होने लगे थे, तथापि सन् १९६० के आसपास उसके बदले हुए अप्रत्याशित रूप ने कई विशिष्टों को चौंका सा दिया। वास्तव में हुआ यह कि आदिकाल से ही लोकप्रिय इस विधा ने अन्य हिन्दी विधाओं की तुलना में अपना स्थान शीर्ष ही बनाये रखा। परिणामस्वरुप अनेक विरोधों को सहते हुए विविध आवर्तो में डूबने-उतरने के बाद भी गीत की लोकप्रियता में नैरन्तर्य बना रहा। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए गीत-एक की भूमिका में यह स्पष्ट किया गया है कि -गीतों का युग समाप्त हो चुका है; यह नारा लगा था कुछ लोगों की तरफ से बाकायदा कुछ आवाजों की शह पाकर। न गीत मरा, न ही उसका युग समाप्त हुआ। हाँ इन नारों के जन्मदाता इन नारों की असमय मौत पर तिलमिलाते हुए आज नये नारों की तलाश अवश्य कर रहे है। किन्तु जब तक सृष्टि में सनातन मनुष्य जीवित है, तब तक काव्य में गीत भी रहेगा।''

यह कथन कोरी भावुकता नहीं है, एक सत्य है - जिसे झुठलाना संभव नहीं है। यदि गीत ने नये भावबोध और नयी अभिव्यक्ति को स्वीकारा है, तो यह सम्पन्नता तो गीत की सामर्थ्य ही व्यक्त करती है कि उसने उदारता के साथ नये युग को अंगीकार किया है। उसने यह सिद्ध किया है कि आधुनिक बौद्धिक युग के प्रभावों को भी वह अपने भावाात्मा धरातल से अभिव्यक्त कर सकती है। अतएव बौद्धिक युग में गीत की आवश्यकता और भी अधिक प्रतीत होती है। **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** का मन्तव्य इसी मत की पुष्टि करता है। उन्होने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि - लोग कहते है कि गीत हृदय की वस्तु है, जिसका सामंजस्य आधुनिक बुद्धिवादी प्रवृतियों से नही हो सकती। परन्तु तथ्य यह है कि युगीन जीवन

में जितनी ही बौद्धिकता और भौतिकता बढेगी; हृदय की पुकार की, गीतों के प्रणयन की उतनी ही अधिक आवश्यकता होगी।

२.८ आज का नवगीत :

''पंख होते है समय के
एक फुनगी पर, कहां वह
आज तक ठहरा
और
बहुत कठिन
संवाद समय से
शब्द सभी पथराए''

राजेन्द्र गौतम के नवगीतों की ये पंक्तियां सहज रूप से समय संज्ञा का परिचय मानव मस्तिष्क से कराने में पूरी तरह सक्षम लगती है। किसी भी क्षेत्र में, समय का अपना विशेष महत्व होता है। फिर, साहित्य का क्षेत्र उससे कैसे अलग रह सकता था। साहित्य की सभी विधाओं पर इसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। परन्तु जब हम गीत विधा की बात करते है तो एक पल को या यूँ कह लें कि प्रथमत: साहित्य का अभिप्राय: काव्य या कविता ही प्रतीत होता है। यह सब कुछ गीत के सुसंस्कृत संस्कारों के कारण है। अन्य विधाओं की अपेक्षा साहित्य में पद्यस्वरूप को ही अधिक महत्व एवं मान्यता मिली है। अपने उद्‌भव से अधुनातन तक की यात्रा करते हुए गीतिकाव्य की रसात्मकता और संवेदनशीलता ही उसके विकास का आधार है।समय के बदलाव ने उसे समकालीन व्यवस्थाओं के अनूकूल सोच में ढालने का अवसर दिया हैं। गीत का यही संस्करण हमारे सामने नवगीत का विलक्षण प्रतिभावान संकल्प लेकर उपस्थित हुआ है।

नवगीत कुमार रवीन्द्र के कथन के अनुसार – आज का हिन्दी गीत वर्तमान स्थिति से रू–ब–रू होने, उसकी सारस्वत और औपनिषेदिक अस्मिता को कायम रखने की क्रांतिकारी प्रक्रिया से गुजर रहा है। यही उसकी समकालीनता है। नवगीत को लगातार समकालीन यथार्थो से तथा समकालीन तथ्यों से दो–चार होना पडा है। यही नवगीत का एक सम्पन्न और सक्षम अन्तर्संवाद का संप्रेषणीय माध्यम निर्मित करता है।

बौद्धिकता की रागात्मक अभिव्यंजना कर गीत ने आधुनिक जीवन के स्पंदन को मुखर किया है। नये संस्कारों को ग्रहण करते हुए नई जीवन पद्धति को स्वयं से जोडा है और नये प्रयोंगों की चेतना से संयुक्त होकर आधुनिक जीवन बोध को व्यक्त करने में अपनी अहम् भूमिका निभाई है।

वास्तव में कविता के पाँच रूप हैं – कथात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक, भावनात्मक तथा चित्रात्मक। इनमें से कविता के भावनात्मक रूप में प्रगति और गीत भी सम्मिलित है।

प्रगीत को अंग्रेजी में लिरिक कहते है। प्राचीन काल में यूनान में प्रगीत शब्द लायर या तन्त्री के साथ गाई जाने वाली कविता को कहा जाता था। यह कविता समवेत और एकाकी रूप में गाई जाती थी। कालान्तर में प्रायः छोटी और व्यक्तिगत कविताओं को प्रगीत कहा जाने लगा। भावनात्मक और छोटा होना प्रगीत का प्रमुख गुण है। प्रबन्ध की ओर झुकाव होने पर प्रगीतों में व्यक्तियों एवं घटनाओं की चर्चा भी आम हो गई है। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' और 'महाराज शिवाजी का पत्र' इसी श्रेणी की रचनाएँ है।

जबकि गीत की रचना में अवसर, रस, गति और राग इन चार तत्वों की अनिवार्यता है। निराला का सरोज स्मृति हिन्दी काव्य जगत् का सर्वश्रेष्ठ शोक गीत है।

वस्तुत: गीत ने अपने स्वस्थ दृष्टिकोण के बलबूते जहाँ एक ओर रूढियों का विरोध किया है, वहीं दूसरी ओर परम्परा के विकास में योगदान देकर आधुनिक युग चेतना के अनेक बिन्दुओं को सामर्थ्य से उकेरा है। किन्तु भाव की महत्ता यहाँ भी सर्वोपरि रही हैं। इसी के परिवेश में विषय और शिल्प को निश्चित साँचें में न ढालकर ताजें और मुक्त वातावरण से संयुक्त करके गीत ने नवगीत की संज्ञा ग्रहण की।

श्री विद्यानिवास मिश्र ने गीत की सामर्थ्य को प्रकट करते हुए कविता से उसकी एकात्मकता व्यंजित करते हुए लिखा है कि – ''जहाँ तक आधुनिक बोध, प्रत्यग्र और गहरे अनुभव, अभिव्यक्ति की असन्दिग्धता और बौद्धिक सम्पृक्तता का प्रश्न है, हिन्दी गीतिकाव्य नई कविता की इन तमाम उपलब्धियों से कृतकृत्य सिद्ध हुआ है और इस प्रकार नई कविता और हिन्दी का इधर का समर्थ गीतिकाव्य समानान्तर नहीं, एक विशिष्ट प्रतिभा है। नई कविता एक सामान्य संज्ञा है, गीत उसका एक विशेष प्रकार.''

लगभग ६० वर्षो की आयु वाले नवगीत के लिए वर्तमान समय अपनी संवेदना को जीवंत रखने की चुनौतियों का समय हैं। मानवीय अस्मिता के लिए लडने का उसका संकल्प, सामाजिक यथार्थ के संदर्भ

में उसके युगीन बोध, लोक सम्पृक्ति, वर्तमान सभ्यता की विसंगतियाँ, मानव मूल्यों का परिकलन और नवीनता के द्वार खटखटाती हुई जिजीविषा की नई उडान तथा नवोन्मेष संभावनाएं, निश्चित रूप से उसके आग्रह को और अधिक सशक्त तथा कारगर बनाने के प्रयोजन है। सामाजिक सरोकारों को निभाते-निभाते संत्रास, त्रासदी, ऊहापोह, आपाधापी, मशीनीकरण, रिश्तों की टूटन-क्षरण के बीच से गुजर रहा है। वह आज की सामाजिक स्थितियों में परिवारों की संक्षिप्तता के साथ-साथ उनके एकल होने तक की दशा का प्रत्यक्षदर्शी हैं। इसी एकल परिवार का एक उदाहरण रवीन्द्र कुमार के नवगीत में स्पष्ट देखा जा सकता है-

''क्या बतलाएं/ इस घर में बच्चे उदास हैं
घर में सब कुछ है/ फ्रिज, टीवी और कम्प्यूटर
सूना कब से नदी किनारे का पूजाघर
वेबसाइट भी हर बच्चे के लिए खास है
जुडे हुए है सारे कमरे डॉटकाम से
सपने बुक है हर बच्चे के अलग नाम से
मम्मी-पापा के कमरे बस पास-पास है।''

आज के युग में संवाद समाप्त हो चुका है, शब्दों का उपयोग कम होता जा रहा है। समकालीन नवगीत में समय बोध, इतिहास बोध और नवीन विचारशीलता ने उसे अभूतपूर्व बनाया है। गंभीरता प्रदान करते हुए संप्रेषणीय बनाया है। नवगीतकारों की संवेदना आज जीवन के ऊहापोह आपाधापी के प्रति अधिक चिंतित दिखाई पडती हैं। समय के साथ गतिमान रहने वाला नवगीत जिसके बिना कविता का स्थान तय नहीं किया जा सकता, इसी नवगीत पर श्री राम परिहार के विचार है- अभी तक ये तय नहीं हो सका है कि पहला नवगीत किसे माना जाये।

'नवगीत मानव मूल्यों एवं मानवीय एषणा के अर्न्तद्वन्द के फलस्वरूप उत्पन्न जीवन संघर्ष का यर्थाथ रूप तो है ही, प्रतिरोध एवं प्रतिकार में भी सक्षम है।' मधुकर अष्ठाना के इस कथन को ध्यान रखा जाये तो आज समाज में उठने वाले शोर-शराबे दिल दहलाने वाले नवगीत पर, उसकी इच्छाओं पर भी एक प्रकार से वशीकरण का जाल फैला दिखता है, युग बोध का यह दबाव उसे भी प्रतिसंवेदित होने से नहीं रोक पाता।

ऐसे ही परिवेश में जीवन के विविध आयामों की व्याख्या की क्षमता रखने वाले नवगीतकार डॉ. अजय पाठक के सामाजिक विश्लेषण तथा स्पष्टवादिता का एक दृष्टव्य और देखें–

बूढे हुए कबीर / आजकल
ऊंचा सुनते है/आंखों से है साफ झलकती
भीतर की बैचेनी/ हुए अकारथ साखी, दोहे
बिरथा हई रमैनी/ खांस–खांस कर
समरसता की/ चादर बुनते हैं

बाल–मन की दुविधाओं के संदर्भ मे भी गहरी संवेदना रखता, गीता का सांसारिक एवं परिमार्जित रूप नवगीत समय के साथ ही चलकर अगली पीढी को उसके आगे आने वाले समय की आहट से सचेत भी करता चलता है और आगाह भी, ठीक एक कुशल भविष्यवक्ता बनते हुए। सामाजिक चेतना में गहरी पैठ एवं जनसमुदाय से सार्थक संवाद कायम करने वाले सजग गीतकारों के शब्दों की व्यथा में इसे देखा जा सकता है।

प्रगतिशील समय के इस दौर में हम अपनी संस्कृति, सामाजिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनी चेतना और मानसिकता के अनुरूप सृजन में कथ्य, पात्र, संवाद और परिवेश आदि को समाविष्ट करते है। नवगीतकार की सोच में साहित्य धारा सदैव ही सामाजिक विचारधारा और यर्थाथ जीवन के समानांतर बहते है। समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। राजनयिक दायित्वहीनता और अर्थव्यवस्था के स्खलन द्वारा उत्पन्न स्थितियों के चलते नवगीतों में मुहावरों का अधिकाधिक प्रयोग करने वाले समर्थ एवं सम्पन्न नवगीतकार भी परेशान दिखता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक विघटन के अंतहीन फैलाव एवं तदजनित आधुनिक वातावरण में संवादों की रिक्तता का दंश, नवगीत आज के समय के इस अवसाद का जो चित्र प्रदर्शित करता है, उसकी टीस निर्मल शुक्ल की इन पंक्तियों में प्रतिध्वनित होती है।–

इन बस्तियों के रंग सारे
हो चुके मैले
तुम्हें दिखते नहीं क्या/ भूल बैठे तुम
कथाओं में झलकती/ तंगहाली

वह सुबह से श्शाम तक/ विद्याव्रतों के पेट खाली
अब नहीं पहचानते तुम/ क्या पसीने चाक सीने
रिक्त संवादों के जो/ आकाश है फैले
तुम्हें दिखते नहीं क्या

मानव अविश्वास का संकट पूरे समाज का संकट है। यह कैसी संस्कृति को जन्म देगा, यह प्रश्न चिन्तनीय है। विविध प्रकार के संघर्ष झेलते विकास-पथ पर नवगीत का अग्रसर बने रहना ही उसकी विश्वसनीय संप्रेषणशीलता का जीवन्त उदाहरण है।

नवगीत का रागात्मक होता आधुनिक स्वरूप बौद्धिक है, अनुशासित है, आशावान है। बुद्धिवादिता या बौद्धिकता आज के युग की ही देन है। आज के समय से बातचीत करता नवगीतकार हृदय नहीं मस्तिष्क प्रधान हैं मानवीय चेतना के वैचारिक संवर्धन के फलस्वरूप सहज संप्रेषणीय है। यह आज के ज्वलंत प्रश्नों के प्रति, विश्व में बढते हुए आतंक के प्रति, भ्रष्टाचार जैसी कुरीतियों के प्रति, समाज के बिगडते चारित्रिक पतन के प्रति, असंतुलित होती देश की राजनैतिक स्थितियों के प्रति, संबंधों एवं रिश्तों के प्रति तथा प्रेम सौहार्द जनित संस्कारों के प्रति पूरी तरह से जागरूक है। समाज की पदचाप पर उनकी पैनी नजर है। सुप्रसिद्ध आलोचक पारसनाथ गोवर्धन के शब्दों में - ''आज के नवगीतकारों में वैचारिक प्रतिबद्धता अधिक है, सघन है, केन्द्रीय भूमिका में है, आधुनिक जीवन समसामयिक परिवेश, परिवेशगत विसंगति और व्यवस्था के प्रति क्षोभ, आक्रोश की अभिव्यक्ति अद्यतन नवगीतों में बडे सहज और प्रभावोत्पादक के रूप में व्यक्त हुई है। कहीं-कहीं अति उत्साह और चिन्तन के कथन से सपाटता लक्षित की जा सकती है। फिर भी नवगीत का भविष्य उज्जवल है। उसका अभिव्यक्ति क्षेत्र समकालीन कविता की किसी भी विधा या शैली से अधिक व्यापक और गंभीर है, उसमें एक निरन्तरता है जो उसकी जीवन्तता का प्रतीक है।''

नवगीतकार : शंभुनाथ सिंह, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, जगदीश गुप्त, रामदरश, मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, हरीश मदानी, नरेश सक्सेना, दिनकर, सोनवलकर रवीन्द्र भ्रमर, शलभ श्रीरामसिंह ठाकुर आदि।

नवगीतों में समाहित बौद्धिकता के कारण ही गीतों में आधुनिकता युगबोध और संवेदना के नए धरातलों का समावेश हुआ है। छायावादी गीतों में कल्पनालोक का भ्रमण है; तो नवगीतों में भोगे हुए आत्मपरक सत्यों का अनुभवजन्य शब्दों से उद्‌घाटन करना है। छायावादी गीतकारों की तुलना में जीवन से पलायन के स्थान पर उन्होंने जीवन से संघर्ष को स्वीकारा है। इस काल के गीतकारों ने प्रणय को मानवीय

धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। आत्मीयता का औपचारिकता में परिवर्तन, निराशा, अनास्था, कुंठित मनोस्थिति को विविध कोणों से इन गीतों में चित्रित किया गया है। सुविधावादी प्रवृत्ति से समझौता न करते हुए उन्होंने अपने गीतों में समकालीन दृष्टिकोण का चित्रण किया है।

निष्कर्षत: समकालीन नवगीत समय से सीधा संवाद करते हुए अपनी पूरी शिद्दत के साथ समाज को महत्वपूर्ण आयाम दे रहा है। नवगीत ने परिवर्तित दिशा से पहचान करते हुए प्रयोगों के नये स्तर को छुआ हैं, किन्तु अपनी जमीन नहीं छोडी है। प्रयोगों के अत्यधिक आग्रह के कारण नई कविता कहीं कहीं हास्यास्पद या विकृति की अवस्था तक भी पहुँच गई है, किन्तु नवगीत सहज प्राकृतिक रूप में बने रहे है; क्योंकि नवगीत ने बौद्धिकता को भावना से सम्बद्ध कर एक संतुलन बनाये रखा है। नवगीत के इस सौन्दर्यबोध में एक स्वस्थ आधुनिकता है– जो सामाजिक संचेतना को पूरी संजीदगी से ग्रहण करती है और विचार तथा भावव्यंजना के नये प्रयोगों के माध्यम से सटीक रूप में अभिव्यक्ति करती है। रागात्मक संस्पर्श, नवीन भाव बोध, नये जीवन मूल्य, शिल्प की मौलिकता और अपनी सनातन ताजगी के साथ नवगीत अपने दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रहा है। जीवनबोध अपने आप में काव्य मूल्य नहीं है, न काव्य मूल्य का विकल्प ही है; पर काव्यमूल्य का निर्धारण करते हुए जीवन बोध अविचारणीय मान जिया जाये, इस प्रस्ताव से सहमति कठिन होगी।

''कविता यही करती है,
यह सीधा मगर जोखिम भरा काम
कि सारे शब्दों के बाद भी
आदमी के पास हमेशा बचा रहे
एक सादा पन्ना।''

अबोध कल्पना यथार्थ के तीखे एहसास को धुधँला नहीं बनाती है; अपितु विडम्बनापूर्वक उसे गहनतर तीखा बनाती है। यथार्थ के एहसास के साथ संघर्ष की स्मृति के साथ थोडी कौतुकी वृति या विनोदप्रियता भी काव्यत्व को सम्भव करने में उपयोगी होती है। लीलाधर जगूडी के अनुसार:– ''समकालीन कवियों की कविता ने न केवल भाषा की शक्ति को ही नया नहीं बनाया, बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी किया है। वहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं, आम आदमी तक पहुँचने वाला मुहावरा युवा कविता ने रचा। बल्कि यों कहें कि आज की कविता आम आदमी की कविता है।''

२.८ निष्कर्ष :

छायावादी काव्य काल भारतीय समाज और साहित्य में अपूर्व प्रयोगों का काल है। तत्कालीन समय में विशिष्ट प्रयोगकर्ता थे– निराला।

व्यंग्य और विद्रूप के सहारे अपने समय की सामाजिक और वैचारिक विसंगतियों की व्यंजना करते हुए पाठक को काव्यानुभूति कराना ही छायावाद का प्रमुख ध्येय है। स्वाधीनता का बोध का विस्तार भारतीय किसान की उपनिवेशवादी और सामन्ती शोषण से मुक्ति की चिन्ता दिखाई देती है। प्रकृति के अप्रतिम सौन्दर्य में डूबता–उतरता कवि पाठक को भी प्राकृतिक सौन्दर्य लहरी में हिलोरें लगवाता है। अपनी स्वच्छन्द कल्पना प्रकृति से मनुष्य के रागात्मक सम्बन्धों की खोज करते छायावादी गीत दिखाई देते है। प्रकृति के लीला रहस्यों का अन्वेषण करती कवि की रहस्यवादी प्रवृति भी दिखाई देती है।

उपरोक्त तथ्यों का विश्लेषण करने से सुस्पष्ट हो जाता है कि भले ही छायावादी गीतों में रोमांसवाद, प्राकृतिक सौन्दर्य जैसी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है; तथापि उस काल के गीतों में युगीन समसामयिक दृष्टि समाहित है। छायावादी गीत भले ही कल्पना के आकाश में उडान भरते हो, तथापि वे पाठक को मन्त्रमुग्ध कर अपनी ओर आकर्षित तो करते ही है।

❑❑❑

• अध्याय - ३ •

श्री चन्द्रसेन विराट का व्यक्तित्व और रचनाधर्मिता की प्रेरणा

अद्यतन प्रकाशित कृति परिचय

गीत संग्रह			हिन्दी गजल संग्रह		
क्रमांक	नाम	वर्ष	क्रमांक	नाम	वर्ष
१	मेंहदी रची हथेली	१९६५	१	निर्वसना चाँदनी	१९७०
२	स्वर के सोपान	१९६८	२	आस्था के अमलतास	१९८०
३	ओ मेरे अनाम	१९६८	३	कचनार की टहनी	१९८३
४	किरण के कशीदे	१९७४	४	धार के विपरीत	१९८४
५	मिट्टी मेरे देश की	१९७६	५	परिवर्तन की आहट	१९८७
६	पीले चावल द्वार पर	१९७६	६	लडाई लम्बी है	१९८८
७	दर्द कैसे चुप रहे	१९७७	७	न्याय कर मेरे समय	१९८९
८	भीतर की नागफनी	१९७७	८	फागुन माँगें भुजपाश	१९९३
९	पलकों में आकाश	१९७८	९	इस सदी का आदमी	१९९७
१०	सन्नाटे की चीख	१९९६	१०	हमने कठिन समय देखा है	२००२
११	बूँद-बूँद पारा	१९९६	११	खुले तीसरी आँख	२०१०
१२	गाओ कि जिये जीवन	२००३	१२	बोल मेरी जिन्दगी	२०१३
१३	सरगम के सिलसिले	२००८		दोहा संग्रह	
१४	ओ, गीत के गरूड	२०१२	१	चुटकी चुटकी चाँदनी	२००६
			२	अँजुरी अँजुरी धूप	२००८
	मुक्तक संग्रह			**सम्पादित संकलन**	
१	कुछ छाया कुछ धूप	१९८९	१	गीत-गंध	१९६६
२	कुछ पलाश कुछ पाटल	१९९८	२	हिन्दी के मनमोहक गीत	१९९७

३	कुछ सपने कुछ सच	२०००	३	हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ मुक्तक	१९९८
४	कुछ अंगाारे कुछ फुहारें	२००७	४	टेसू के फूल	२००३
५	कुछ मिश्री कुछ नीम	२००९	५	कजरारे बादल–वर्षा गीत	२००४
६	कुछ लोहा कुछ मोम	२०१३	६	धूप के संगमरमर– ग्रीष्म गीत	२००५
			७	चाँदनी– चाँदनी	२००७

पुरस्कार एवं सम्मान :

१. मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य परिषद,भोपाल द्वारा माखनलाल चतुर्वेदी वर्ष १९७६ में पुरस्कार प्राप्त एवं १९९१ में सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार। उतरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ से पुरस्कृत।

२. १९९२ में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भोपाल द्वारा वर्ष १९९१–१९९२ का वागीश्वरी पुरस्कार प्रदत्त।

३. वर्ष १९९४ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा साहित्य सारस्वत की मानद उपाधि।

४. मारवाडी सम्मेलन, मुम्बई द्वारा घनश्याम सराफ सर्वोतम साहित्य पुरस्कार प्रदत्त।

५. साहित्य संस्था अभियान जबलपुर द्वारा १९९६ का दिव्य अलंकरण।

६. ११९६ का मध्यप्रदेश लेखक संघ, भोपाल का अक्षर आदित्य सम्मान।

७. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल का वर्ष ११९७ का अम्बिकाप्रसाद पुरस्कार।

८. सम्भावना साहित्य संस्थान अभियान जबलपुर का वर्ष १९९८ का गजल विधा में श्रेष्ठ विधा कृति का हिन्दी भूषण पुरस्कार।

९. वर्ष १९९९ का राधादेवी स्मृति साहित्य संस्था, शिवनी, मध्य प्रदेश द्वारा २००० का हिन्दी भूषण पुरस्कार प्रदत्त।

१०. १९९९ में श्री साहित्य सभा, इन्दौर का उदयशंकर पुरस्कार।

११. मुरैना मध्य प्रदेश साहित्य संस्था का वर्ष १९९९ का गीत गन्धर्व पुरस्कार।

१२. कला संगम अकादमी, प्रतापगढ उत्तर प्रदेश का १९९९ में विवेकानन्द सम्मान

१३. राष्ट्रभाषा परिषद, मुम्बई का १९९९ में सप्तम महादेवी पुरस्कार।

१४. भारतीय संस्कृति संस्थान, नजीबाबाद से वर्ष १९९९ का भारती श्री सम्मान।

१५. गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, अहमदाबाद, गुजरात का वर्ष २००० का हिन्दी गरिमा सम्मान

१६. अभियान साहित्य संस्था,जबलपुर द्वारा वर्ष २००१ का नूर हिन्दी भूषण सम्मान प्रदत्त।

१७. साहित्यकार संसद समस्तीपूर बिहार का २००२ में मीर तकी मीर राष्ट्रीय शिखर सम्मान।

१८. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का वर्ष २००२ में सम्मेलन सम्मान।

१९. २००२ में गाजियाबाद उ.प्र. माण्डवी प्रकाशन का निर्मलादेवी स्मृति साहित्य पुरस्कार।

२०. सृजन सम्मान, छत्तीसगढ द्वारा २००३ में नारायणलाल परमार सम्मान।

२१. अभियान साहित्य संस्था,जबलपुर द्वारा वर्ष २००३ का शान्तिराज हिन्दी रत्न अंलकरण।

२२. तुलसी साहित्य अकादमी, भोपाल द्वारा २००४ में तुलसी सम्मान।

२३. २००४ में डॉ. रामेश्वर खण्डेलवाल द्वारा तरुण अखिल भारतीय काव्य पुरस्कार।

२४. २००४ में म.प्र.राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल का वर्ष २००४ का अम्बिकाप्रसाद दिव्य पुरस्कार।

२५. अखिल भारतीय कलामंच मुरादाबाद द्वारा २००४ में रामकिशन अग्रवाल स्मृति गीति साहित्य सम्मान।

२६. काव्य शोध संस्थान, दिल्ली का २००४ में काव्य वारिधि सम्मान।

२७. कादम्बरी साहित्य संस्था,जबलपुर द्वारा वर्ष २००५ का पं. रामेन्द्र तिवारी समग्र लेखन सम्मान प्रदत्त।

२८. कला मन्दिर, भोपाल द्वारा पवैया पुरस्कार २००५ में।

२९. पुष्पगंधा प्रकाशन वर्धा छ.ग. द्वारा स्व. हरिठाकुर स्मृति सम्मान २००६ में

३०. नेमा फाउण्डेशन द्वारा २००६ में तुलसी राम नेमा साहित्य सम्मान।

३१. करवट कला परिषद भोपाल के द्वारा २००७ में कलासाधना सम्मान।

३२. रिसर्च लिंक शोध जर्नल इन्दौर द्वारा समग्र अवदान हेतु २००८ में स्वर्णपदक प्राप्त।

३३. भारतीय वाडमय पीठ कोलकता द्वारा २००९ में रविन्द्रनाथ ठाकुर सारस्वत साहित्य सम्मान प्राप्त

३४. रामकिशन सिंहल फाउण्डेशन शिवपुरी द्वारा २००९ में गिरिजाशंकर गीत नवगीत सम्मान।

३५. अभिनव कला परिषद भोपाल द्वारा २०१० में अभिनवश्शब्द शिल्पी मानद उपाधि।

३६. लेखक संघ भोपाल द्वारा २०१० में मेहमूद जकी स्मृति गजल सम्मान।

३७. मालवा रंगमंच समिति उज्जैन एवं कृतिका कम्यूनिकेशन द्वारा २०१० में हिन्दी सेवा सम्मान।

३८. देव भारतीय पत्रिका का वर्ष २०११ में देव भारतीय सम्मान।

३९. साहित्य संस्था भारतेन्दु समिति द्वारा २०१२ का शंभुदमाह सक्सेना सम्मान।

४०. २०१२ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा साहित्य भूषण सम्मान।

४१. शासकीय अहिल्या पुसतकालय इन्दौर का २०१३ में कृति कुसुम सम्मान प्रदत्त।

४२. २०१४ में बोल मेरी जिन्दगी कृति पर कुसुम सम्मान प्रदत्त।

४३. २०१४ में भारतीय वाडमय पीठ कोलकता द्वारा साहित्य शिरोमणि मानद उपाधि।

४४. दुष्यंत कुमार संग्रहालय भोपाल द्वारा २०१४ में सुदीर्घ साधना सम्मान।

३.१ श्री चन्द्रसेन विराट का जीवन परिचय :

श्री चन्द्रसेन विराट एक पहचाना हुआ नाम है– हिन्दी गजल एवं गीत विधा के लिए। वह केवल यांत्रिक कवि नहीं अपितु एक संवेदनशील या सौन्दर्याभिभूत व्यक्ति है। उनके साथ और उनके भीतर एक बहुत व्यापक अनुभव तथा जीवन्त संसार हर वक्त मौजूद रहता है; इसलिए काव्य प्रतिभा से प्राप्त उनकी कल्पनाशीलता हवाई न होकर जीवन की सहज स्वाभाविकता से आप्लावित है। उनके काव्य में जीवन के सौन्दर्य की व्याप्ति है और रस का उन्मेष। इसी कारण उनकी लेखनी में कलात्मकता की अभिवृद्धि हुई है और सजग विश्वास–आस्था का सन्निवेश भी। वस्तुत: विराट का काव्यदर्शन रागात्मक अनुभूति का दर्शन है।

कविवर विराट के गीतो और मुक्तिकाओं में सुख–दुख के सामंजस्य का प्रस्थापन है, प्रेयसी–प्रियतम के प्रणय व्यापार संयोग संयोग–वियोग (संयोग अधिक, वियोग कम) के अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं, वहीं प्रणय सम्बन्धों में एक दृढता का भाव अनुस्यूत है। साथ ही जीवन के चिरन्तन सत्यों के बोध में जीवन के शाश्वत मूल्यों में संतुलन की अभिव्याप्ति हैं। इसलिए प्रकृति में कवि के भावों का प्रक्षेपण सर्वत्र है और समस्त जड वस्तुएँ मनुष्य की चेतना में रंगकर रूपायित हो गई हैं। निर्वसना चाँदनी, आस्था के अमलतास, पलकों में आकाश की रचनाएँ, रागात्मकता, रसात्मकता और प्रकृति की उदातता से आप्लावित है।

आलोचकों एवं समीक्षकों द्वारा विराट को आत्मिक और माँसलवादी सौन्दर्य का अद्वितीय कवि कहा है; कारण यही हो सकता है कि उनकी रचनाओं में संगमरमर का उजलापन और गुलाब की कमनीयता से अनुप्रेरित सुगंध दोनों ही विद्यमान हैं, जिनमें मार्मिकता और निजत्व देने का भरपूर सामर्थ्य है। किन्तु विराट ने अपने गीत–सृजन एवं रोमानी रूझानों को खुद ही रद्द करते हुए तथा दुष्यन्त की जमीन को पहचानते हुए अपनी जमीन पर खडे होने की सार्थक पहल की हैं और इसी पहल का सिलसिला उन्हें कविता

के काल्पनिक आकाश से हटकर दुखियारे जीवों के विस्तृत और यथार्थ संसार से जोडता भी हैं। वह केवल भावुकता के संसार में 'अनास्था पैदा करने की जमीन तैयार नहीं करते, वे तो आस्था के साथ सर्जनात्मक ईमानदारी पर भरोसा करते हुए समष्टि के सत्य को इतिहास का परिवर्तन चक्र बनाते है।

अस्सी (८०) वर्ष पूर्व ३ दिसम्बर १९३६ को जन्में चन्द्रसेन विराट की मातृभाषा मराठी है। सन १९५८ में नागरी यांत्रिकी में नेशनल डिप्लोमा प्राप्त कर ये सेतु निगम के प्रबन्धक के पद पर कार्यरत है। उनका प्रारम्भिक जीवन मध्यमवर्गीय आर्थिक विषमता की स्थिति में व्यतीत हुआ। पिता श्री यादवराव डोके साधारण मास्टर से जिला शिक्षा अधिकारी के पद पर पहुँचे। स्वयं विराट ने भी ८० रूपये प्रतिमाह की प्राथमिक शाला की मास्टरी की, साथ ही यांत्रिकी (इंजनियंरिग) की पढाई भी। प्रारम्भ से ही जीविकोपार्जन का कष्ट भोगने वाले विराट की अभावों से पुरानी पहचान रही है।

किशोरावस्था में सुने राम-दंगलों ने विराट को बहुत प्रभावित किया। यद्यपि गीत-लेखन के बीच नैसेगिक रूप से उन्हें अपनी माता जी श्रीमती नेणूताई डोक से ही प्राप्त हुए हैं। पत्नी हेमलता ,पुत्रद्वय संतोष, तथा एक पुत्री सपना डोके बस यही उनकी गृहस्थी है।

विराट के अजस्त्र काव्य स्रोत ने हिन्दी काव्य जगत को १२ मार्मिक कृतियाँ- मेंहदी रची हथेली, स्वर के सोपान, ओ मेरे अनाम, निर्वसना चाँदनी, किरण के कशीदे, मिटटी मेरे देश की,पीले चावल द्वार पर, दर्द कैसे चुप रहे, भीतर की नागफनी, पलकों में आकाश, बूँद-बूँद पारा और आस्था के अमलतास दी है। पीले चावल द्वार पर कृति पर मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य परिषद, भोपाल द्वारा माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ का पुरस्कार प्राप्त कर चुके है। निर्वसना चाँदनी और आस्था के अमलतास हिन्दी गजलों या मुक्तिकाओं के काव्य संग्रह है और शेष गीत संग्रह।

विराट जी ने गजल को मुक्तिका कहा है। उनकी भाषा मराठी है, अत: उनके लिए खडी बोली हिन्दी का संस्कृतनिष्ठ रूप अधिक सहज प्रतीत होता है, बनिस्बत खडी बोली के उस रूप के, जो उत्तर प्रदेश, हरियाणा और उसके आस पास के क्षेत्रों में प्रचलित है- अर्थात उर्दू मिश्रित रूप। विराट जी ने भी इसी भाषा को अपनी भावाभिव्यक्ति का आधार बनाया है। प्रतीत होता है कि इस शुद्ध हिन्दी भाषा में गजल लिखनेवालों में श्री चन्द्रसेन विराट भले ही अकेले नहीं है किन्तु सर्वोपरि निश्चय ही है।

विराट जी प्राय: ही हिन्दू धर्म और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य से हिन्दू संस्कृति और द्योतक भाव और श्शब्द लेकर उनसे अपने काव्य को सजाते है। वे मस्ती, प्रेम और सौन्दर्य का आस्वाद देने वाले रोमानी कवि है। उनकी पंक्तियाँ प्राय: ही गीतों का तरन्नुम और संगीत की झूमती हुई लय लिये होती है।

३.२ चन्द्रसेन विराट का रचनात्मक व्यक्तित्व :

चन्द्रसेन विराट जी का रचनात्मक व्यक्तित्व विविधतापूर्ण है। एक गीतकार के रूप में ख्याति पाने के साथ–साथ उन्होंनें गजल के क्षेत्र में भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। विराट जी की लेखनी ने भारतीय जीवन के विविध पक्षों को अपनी रचना का आधार बनाया। मानव जीवन के दुख, पीडा, संत्रास, घुटन जैसे समसामयिक जीवन बोध का रचनात्मक रूप प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में एक ओर देश, जातीय अभिमान, संस्कृति, परम्परा ओर भारतीय मानस का बोध है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय प्रेम, मानवीय स्वाभिमान और उसकी गरिमा, मानव सम्बन्ध, नारी के आदर्श रूप, शशाश्वत सौन्दर्य और जीवन के प्रति आस्था का भाव है।

विराट जी ने इन विषयों को अपनी रचनाधर्मिता की क्षमता के अनुरूप छन्दबद्ध करने का उपक्रम किया है। विराट जी की रचनात्मकता व्यापक विधान और भावों के विस्तार से भरी है। वे गीत, गजल, मुक्तिका, मुक्तक आदि में छंद प्रयोगों की ओर आकृष्ट रहे है। विराट जी ने छन्द के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हुए उसके प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक, लाक्षणिक आदि रूपों का आवश्यकतानुरूप प्रयोग किया है। उनकी रचनात्मक क्षमता और संलग्नता के विषय में यह कथन उल्लेखनीय है कि – भारतीय जनजीवन, भारतीय संस्कृति से विराट कभी पृथक नहीं हुआ। यह विराट की एक ऐसी विशेषता है, जो उन्हें अन्य रचनाकारों से अलग कर एक विशिष्टता प्रदान करती है। उनकी रचनाओं में चित्रित बिम्ब, अनुभूति, कल्पनाएँ और चित्र शुद्ध भारतीय धरातल पर है। उनकी रचनाओं में दुख, पीडा, संत्रास, घुटन आयातित नहीं हैं। जिस धरती, जिस माटी जिस हवा पानी में लेखक श्वास लेता है, वहीं के है।

विराट की कृतित्वता अनुभूति की तीव्रता, प्रेम की कोमलता और बौद्धिक संतुलन की देन है। विराट की कृतित्वता का सामाजिक दृष्टिकोण इस बात को व्यक्त करता है कि जीवन से निर्लिप्त रहकर काव्य जीवित नहीं रह सकता और न ही जनविमुख होकर वह अपना अस्तित्व कायम रख सकता है। उनकी कृतित्वता का उद्देश्य यह है कि वह मानवीय संदर्भो को समसामयिक परिप्रेक्ष्य में मानवीय करुणा को बहाकर, सुप्त संवेदनाओं को जगाकर सामाजिक चेतना लाना चाहते है। वह युगीन हलचलों में तटस्थ न रहकर उनमें अपनी सक्रिय भागीदारी निभाना चाहते है। उनके लेखन में शैली की सहजता एवं प्रवाहमयता है।

३.३ श्री चन्द्रसेन विराट का रचना जगत में प्रवेश :

चन्द्रसेन विराट का जन्म ३ दिसम्बर १९३६ को इन्दौर के बलवाडा ग्राम में हुआ। विराट के पिता का नाम श्री यादवराव डोके तथा माता का नाम श्रीमती वेणुताई डोके था। इनके पिता शासकीय सेवा के अन्तर्गत शिक्षा विभाग में शिक्षक थे। पिता के स्थानान्तरण के कारण इनकी प्रारम्भिक शिक्षा क्रमश: मनासा, महिदपुर, कन्नौद, इन्दौर आदि नगरों में हुई। माँ के सान्निध्य से इन्हें नैसर्गिक कवित्व प्राप्त हुआ। बचपन से ही माँ को गुनगुनाते हुए सुनने पर इन्हें गायन व लेखन की प्रेरणा मिली। संगीत के प्रति रूचि उन्हें अपनी माँ से प्राप्त हुई, उनकी माँ की भजन गाने में एवं संगीत में रूचि थी।

चन्द्रसेन विराट नौ-दस वर्ष की आयु में ही तुकबंदी करने लगे। जब विराट चौथी कक्षा में अध्ययनरत थे, तब महिदपुर के उसी स्कूल में (जिसमें वे अध्ययन कर रहे थे) १५ अगस्त के समारोह में उन्होंने अपनी पहली स्वरचित रचना का पाठ किया। रचनाकार के रूप में यह उनका प्रथम प्रयास था; निरन्तर स्कूल के उत्सवों में सहभाग करने से उनके लेखन मे उत्तरोतर प्रौढता आती गई।

रचनाकार के रूप में यह उनका प्रथम परिचय था। इनकी प्रथम रचना इंदौर के जागरण नामक समाचार पत्र में प्रकाशित हुई। उसके पश्चात निरन्तर विविध पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई।

उनकी प्रथम रचना इन्दौर से प्रकाशित 'जागरण' नामक समाचार-पत्र में सन्१९५५ में प्रकाशित हुई। उसके पश्चात् उनकी अस्फुट रचनाओं का प्रकाशन विविध पत्र-पत्रिकाओं यथा: धर्मयुग, माध्यम, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, आज आदि में प्रकाशित होने लगी। सभी प्रकाशित रचनाओं का संकलन संग्रहों में समाहित है। सन् १९६६ में दिल्ली के लाल किले पर गणतन्त्र दिवस के अवसर पर कवि विराट ने राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले कवि सम्मेलन में 'गोपालदास नीरज, दिनकर, वीरेन्द्र मिश्र, हरिवंशराय बच्चन आदि प्रतिष्ठित कवियों के साथ काव्य पाठ किया।

विराट को शैशवावस्था से ही मंच से लगााव था, जो आज तक बना हुआ है। विराट ने सन् १९५८ में सर्वप्रथम आकाशवाणी पर रचनापाठ किया आकाशवाणी पर इनकी रचना 'चाँद का डोरा' बहुत लोकप्रिय हुई। विराट अपनी रचना लिखने के साथ-साथ उसकी धुन स्वंय बनातें हैं। सारिका, सरिता, मुक्ता, साक्षात्कार, कलावर्ता आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर उनकी रचनायें प्रकाशित होती रही।

इनके परिवार में विराट सहित पाँच सदस्य हैं। इनकी पत्नी का नाम श्रीमती हेमलता डोके हैं। इनके दो पुत्र एवं एक पुत्री है। इनके पूर्वज मूलत: महाराष्ट्र के पूना शशहर के निवासी हैं। पितामह श्री कृष्णरावजी

डोके तत्कालीन होकर राज्य में सैन्य अधिकारी के पद पर पदस्थ होकर इन्दोर में स्थायी रूप से बस गये। श्री यादवरावजी ने शिक्षक के रूप में शासकीय सेवा कार्य आरम्भ किया और शिक्षा अधिकारी के पद पर पहुँचकर सेवानिवृत हुए। इनका पाणिग्रहण पच्चीस वर्ष की आयु में ४ मई १९६१ को विमल अम्बेडकर के साथ पूना में सम्पन्न हुआ।

सन् १९५३ में हायर सैकण्डरी की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् १९५६ में होलकर कॉलेज इन्दौर से इन्टरमीडिएट की परीक्षा विज्ञान विषय लेकर उतीर्ण की। तत्पश्चात् गोविन्दराम सेक्सरिया टेक्नालाजिकल इंस्टीट्यूट इन्दौर से सन्१९५८ में नागरी यांत्रिकी में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। बचपन से विराट की अध्ययन में विशेष रूचि थी। विपरीत परिस्थितियाँ होने पर भी इन्होंने साहस नहीं छोडा और अपनी पढाई सतत जारी रखी। १८५९ में श्री विराट लोक निर्माण विभाग में अभियंता के पद पर नियुक्त हुए।

उन्हें साहित्य सृजन की प्रेरणा किशोर अवस्था में सुने गये राम दंगलो से मिली, जिसमें गीत संगीत की प्रतियोगिता होती थी। साहित्यकारों में उन्हें जिन-जिन कवियों सें प्रेरणा प्राप्त हुई-सुर्यकान्त त्रिपाठी निराला, प्रसाद, दिनकर, बच्चन, नीरज एवं त्यागी।

कविताएँ लिखने के प्रारम्भिक दौर में, मैं वीर रस की कुछ लम्बी कविताएँ लिखता था और ऊँची आवाज में जोश-खरोश के साथ पढता था। यह गीतो की रचना एवं मधुर कंठ से प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता था। वीर रस की जोशीली रचनाओं की प्रस्तुति के बाद मित्रगण मुझ स्थूलकाय की 'तुम्हारा सब कुछ विराट है भई, क्या शरीर, क्या कविताएँ और क्या पढना। सब कुछ के साथ तुम विराट ही हो ।' मजाक में कही जाने वाली इस टिप्पणी के साथ विराट नाम धीरे-धीरे मेरे नाम के साथ कब जुड गया (शायद १९५५ से १९५९) कुछ ठीक से मुझे भी याद नहीं है। विराट उपनाम मेरे नाम के साथ जुडा एवं प्रकाशित/ प्रसारित एवं थोडा बहुत प्रचारित हो जाने के बाद इसे छोडा जाना संभव ही नहीं रहा और यह उपनाम मुझे काम से वामन एवं नाम से विराट होने का बोध कराता रहता है। शायद इसी बोध ने मुझसे स्वयं पर यह व्यंग्य भी करवाया है कि- 'तुम थे विराट लेकिन वामन निकल गये।' १९६० में डॉ. हरिवंशराय बच्चन से भेंट करके आशीर्वाद लिया था। जब भी उन्होंने कहा था कि 'अच्छे भले गीतकार हो, कोमल मधुर गीत लिखते हो, यह क्या अपना नाम विराट रख लिया? कितना परुष, कठोर एवं ध्वनि की दृष्टि से गीतकार के लिए अनुपयुक्त नाम रख दिया तुमने। मुझ पर घडों ठण्डा पानी पड गया। किन्तु खुद को सयंत कर उत्तर दिया- 'डॉक्टर साहब मुझे मेरा कवि नाम चुनने का अवसर ही कहाँ मिला? यह तो प्रारम्भिक

अवस्था में मेरे मित्रों द्वारा मजाक में दिया गया नाम है जो मेरे साथ चिपक गया है। अगर मुझे मौका मिलता तो अपने लिए कोई मधुर सा, कोमल सा नाम नहीं चुनता? तब तो फिर इसी नाम को अपने कवित्व को सार्थक करो –डॉ. बच्चन बोले। मैने आँखें मूँदकर इसे उनके आशीर्वाद के रूप में ग्रहण किया और चुप हो गया।

३.४ विविध विचारधाराओं के आधार पर विराट का व्यक्तित्व :

श्री विराट की विचारधाराओं का विवेचनापरक विश्लेषण निम्नानुसार है–

१. व्यक्तिगत साक्षात्कारों के आधार पर

२. संग्रहों की भूमिका के आधार पर

३. प्रमुख रचनाओं के आधार पर

१. व्यक्तिगत साक्षात्कारों के आधार पर :

श्री विराट गंभीर प्रकृति के व्यक्ति है। बनावटीपन से दूर, सीधा–सादा जीवन व्यतीत करने वाले कवि विराट के हृदय में श्शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया है। निराला, प्रसाद, दिनकर, बच्चन, दुष्यंत, नेपाली, नीरज एवं त्यागी जैसे महान कवियों से प्रभावित श्री विराट ने अपने जीवन के अनुभवों को ही काव्य सृजन किया।

''सिर्फ मेरे ही नयन थे, जो जरूरत के समय
जब कोई न दे रहा था, दे गये पानी मुझे।
क्या कहूँ अपने अंह की आज तक मेरे सिवा
मिल न पाया दूसरा मुझसे अधिक मानी हुई।''

२. संग्रहों की भूमिका के आधार पर :

रमानाथ अवस्थी ने विराट के काव्य की चर्चा करते हुए कहा है कि – ''श्री विराट की कविताएँ, गीत या गजल रचनाएँ पढी और सुनी तो लगाा कि जैसे उनका रचनाकार कविता के बहाने एक ऐसी अनूठी शब्दसृष्टि कर रहा है, जो उसे उस बिन्दु तक ले जायेगी, जहाँ एक ऐसा गुलाब जो अकेला होकर भी पूरी फुलवारी से अधिक आकर्षक और हमारी पहचान के योग्य है। मेरे लिए विराट की कविता उसी गुलाब की तरह है। मुझे विश्वास है कि यह गुलाब काव्य–देवता के लिए आनन्दमय छन्द जैसा होगा।''

विराट के गीतों और मुक्तिकाओं में युग जागरण की चेतना के साथ साथ जीवन की विसंगतियों से श्रांत-क्लांत मनुष्यों के लिए प्रणय के मधुर स्वर भी संवाहित किए है। उन्होंनें जीवन के विविध रंगों का समावेश कर काव्य को इन्द्रधनुषी छटा से श्रृंगाारित किया है।

३. प्रमुख रचनाओं के आधार पर :

श्री विराट जीवन के हर रंग और हर विधा के रचनाकार है। जीवन का यथार्थ उनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है।

''इसमें आँसू भी है, हंसी भी है
इसमें कांटे भी है, कली भी है।
दूसरा पक्ष भी है जीवन का
धूप यदि है तो चांदनी भी है।।

रचना प्रक्रिया : उनकी गीत में गहरी आस्था है। प्रारम्भ से ही उन्होंने प्रेम एवं श्रृंगाार का रास्ता चुना और गीत के माध्यम से उन्हें व्यक्त किया। उनके गीतों में प्रेम की लय है जिसका अपना प्रवाह और प्रभाव है। आर्कषण, विकर्षण, आवेग, आवेश, आतुरता, अनुराग, प्रतीक्षा, समर्पण, सम्मोहन आदि संवेदनाओं का कलात्मक चित्रण उनके गीतों की विशेषताएँ हैं। भावुक और संवेदनशील गीतकार होने के साथ-साथ उनके गीतों में आम आदमी की पीडा भी अभिव्यक्त हुई है।

वे समय के प्रति चिन्तित और चेतनाशील गीतकार रहे है।यद्यपि उन्हें रूप और प्रणय का गीतकार माना जाता है,पर फिर भी वे समाज के प्रति अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ नहीं है। उनकी रचनाधर्मिता इस बात का प्रमाण है कि वह हिन्दी की सास्कृतिक पीठिका लिए हुए प्रतीकात्मक तथा मिथकीय भावभूमि पर अपनी निजी शैली की स्वतन्त्र पहचान बनाती है। उनके गीत युग जीवन को अनेक प्रकार से रूपायित और ध्वनित करते है। उनकी रचनाधर्मिता, अनुभूति की तीव्रता, प्रेम की कोमलता और बौद्धिक सन्तुलन की देन है, उन्होंने दर्द को संवेदना के स्तर पर देखा, समझा, वैषम्यों का जहर पचाया और एक गीतकार के नाते अंधेरे पर रोशनी के हस्ताक्षर किये।

श्री विराट स्वयं स्वीकारते है- ''एक इन्द्रधनुषी पंखिल क्षण स्वर सतरंगी शब्द योजना के रंगो से सजा मुझे छूता है। एक अनोखी छटपटाहट, व्यक्त होने की आकुलता, एक अबूझ अकुलाहट मुझे गीत लेखन व कहने को विवश करती है- यही वह स्फुरण का अनिर्वचनीय क्षण मेरे लिए कविता लेखन एवं

काव्य सृजन का क्षण होता है। यह छन्दमयी, गानमयी श्शब्दाभिव्यक्ति मुझे विवश करती है कि कुछ लिखूँ, कुछ गाऊँ, एक पूरा भाव, एक पूरा विचार छन्द के वेश में मेरे कंठ पर दस्तक दे तो मैं कब तक अनगाया रह सकता हूँ। बस इसी तरह मेरे गीत का जन्म होता है।''

आज के यांत्रिक जीवन में मानवीय संवेदनाओं को बरकरार रखने के लिए कविता की जरूरत को बहुत भीतर से महसूस करते है। विराट की कविता विभाजन और अलगााव के प्रति मानवीय सदाशयता और मूल्यों की कविता है।

यह विभाजन धार का अलगााव वर्जित कर चले।
दो तटों को जोड दे वह सेतु निर्मित कर चले।
हम किरण का बाण पूरी श्शक्ति से मारे उसे
वध न चाहे तिमिर का किन्तु मूर्छित कर चले।

विराट की राय में गीतों का उत्स है- दर्द की तीव्रता। गीतों की तरलता अश्रु का अवदान है। इनके भीतर का कवि सत्ताधारी तानाशाह, अंहकारी और अविवेकी मुखौटाधारियों का विरोध कर सदैव सजगता के साथ समाज के प्रहरी बनने का कार्य करते है। वे कहते है कि कला न तो जीवन से निर्लिप्त हो सकती है और न जनविमुख होकर अपना अस्तित्व कायम रख सकती है। उनकी कविता व्यक्तियों के अन्तर्मुखी संकीर्ण दृष्टिकोण में विस्तार लाना चाहती है और तटस्थ दर्शक बनकर युगीन हलचलों में अपनी साझेदारी निभाना चाहती है।विराट की रचनाधर्मिता में श्शैली शिल्प की सहजता और प्रवाहमयता है।

अनेक स्थितियों में विराट वस्तुस्थिति का सही मुआयना करते हैं, जब उनकी जुबान धारदार हो जाती है और वे चुनौती के स्वर में उतर आते है। भयावह स्थितियों से सीधी मुठभेड और संघर्ष की लालसा उनमें दिखाई देती है। उनमें विकृतियों, विसंगतियों और विषमताओं को बेनकाब करनेवाली रचनाओं में सामाजिक यथार्थ और परिवेशगत सच्चाइयो का ताना-बाना अपनी सर्वोतम अभिव्यक्ति के नजदीक है और उनका स्वर भी सशक्त है। विराट का सृजन क्षेत्र में उस समय प्रवेश हुआ, जब कविता के प्रति सामान्य पाठक में भी अनासक्ति का जन्म होता है। कवि लिखते हैं कि-

''स्वर न जगते सुखों में
पीर ही कविता जगाती

कसक कोई गीत बनती

सांस घायल गीत गाती।''

गीत विधा पर विराट की पकड गहरी है अपने सघन भावों एवं विचारों को सरल रूप में व्यक्त करने की कला में वे निष्णात हैं। विराट अपने युग के उन सिद्ध कवियों में से है, जिन्होंनें हिन्दी गीत को नवान युग की आशा-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनाया। उनके गीत भावना के आंतरिक लय से अनुस्यूत, कोमल, मधुर और छन्द संगीत के अतिरिक्त विराट के गीतों में अन्त्यानुप्रास की सकल योजनाओं की सही और छोटे गत्यात्मक छन्दों को अपनाने की प्रवृति दिखाई पडती है, जिसके कारण उनके गीत गेयता से युक्त है।

वैशिष्ट्य पूर्ण रचना रचकर के किया अनूठा कार्य

निश्चय ही यह संग्रह होगा दुनिया को स्वीकार्य

चन्द्रसेन जी! आप बन गये हो शिल्प विद्या के धाम

मात्रिक छन्दों में प्रबल महारत, काव्यामृत की आन।''

निष्कर्ष : श्री विराट के गीत नवीनता से ओत-प्रोत है। उन्होंने अपने परिवेश की जटिलता को संक्षिप्त किन्तु प्रभावी रूप से सम्प्रेषित करने के लिए मुक्तिका लिखी।

३.५ गीत और श्री चन्द्रसेन विराट :

पेशे से यांत्रिक होने के कारण वे बौद्धिक और मशीनी परिवेश में जीते हैं, पर कवि होने के कारण भावात्मक सागर में डूबते-उतरते रहते हैं, यद्यपि दोनों का समन्वय कठिन ही नहीं लगभग असम्भव सा है, पर श्री विराट के व्यक्तित्व की यही विशेषता है कि उन्होंनें दोनों पहलूओं को भिन्न नहीं माना अपितु एक के कार्य सिद्धि में दूसरे का प्रचूर सहयोग लिया हैं। कहतें है कि कवि भावुकता के प्रवाह में शिल्प को अनदेखा कर देता है, पर कवि विराट का यांत्रिक व्यक्तित्व इस कमी को भी पूरा कर देता है। उनके व्यक्तित्व की इस विशेषता ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया. सनातन सामर्थ्य के धनी इस गीत विधा से चन्द्रसेन विराट भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। अपने मानसिक विचारों एवं सोच के कारण उन्हें अपनी विचाराभिव्यक्ति के लिए गीत विधा ही सर्वोत्कृष्ट अनुकूल लगी. अपनी रचना प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि -'' मेरे गीतकार मन के तहखाने में न जाने एक बाँसुरी क्यों है? सासों की वायु पर बजना इस बाँसुरी का स्वभाव है, नियति है। गीत मेरे कवि मन की प्रकृति है। गीत के प्रति मेरी आस्था

अटूट है। अन्य विधाओं ने इतने लालच दिये, प्रतिष्ठित करवाने के कौल भरे, पर मेरा कवि मन गीत वाली उस बाँसुरी का ही आशिक है।'' विराट के ये उद्गार बताते हैं कि वे अन्य विधाओं की ओर गतिशील हो सकते थे, किन्तु उनके मन की स्वाभविक प्रकृति को गीत ही प्रिय लगे, फलत: उन्होंनें अपनी अटूट आस्था गीत को समर्पित की.

गीत के प्रति समर्पित श्री विराट अपने स्वभाव की मिलन सरिता से, सरलतम व्यक्तित्व से, अनवरत् साहित्य साधना से तथा स्वर के सम्मोहन से देशव्यापी ख्याति प्राप्त कर चुके है.जीवन के कठोर यांत्रिक यर्थाथ को भोगते हुए भी उनके गीतों की रसधारा आस्था, शक्ति, निष्ठा, ताजगी, उल्लास और सहज प्रेषणीयता से सम्बद्ध होकर निरन्तर प्रवहमान रही है.

वस्तुत: विराट एक समर्थ गीतकार हैं, जिन्होंने नवगीत को अपनी साधना से वास्तविक अर्थ प्रदान किया हैं और हिन्दी नवगीत की साठोत्तरी परम्परा को सम्पन्नता प्रदान की. अत: श्री नीरज के शशब्दों में – ''गीत के लिए पूर्णत: समर्पित एक उज्जवल हस्ताक्षर आडम्बरों एवं औपचारिकता से परे मानवता के सरल रूप का समर्थक गीतकार जो किसी वाद से नहीं जुडा, जो किसी खेमें या मठ में शामिल नहीं हुआ. एकाकी अलख जगाया है. इस प्रकार विराट से गीत और गीत से विराट कभी अलग नहीं हो पाया।

❑❑❑

• अध्याय - ४ •

श्री चन्द्रसेन विराट : कृतित्व समीक्षा

४.१ रचनाएँ (कृतित्व) :

हिन्दी नवगीत में रूचि रखने वालों के लिए विराट एक परिचित और प्रतिष्ठित नाम है। विराट की कविताओं में स्वर, कथ्य और काव्य का विस्तार है। अक्सर गीत विधा पर यह आरोप लगााया जाता है कि वह आधुनिक जीवन की जटिल संवेदनाओं को व्यक्त करने में अक्षम है। इस आरोप को निराधार साबित करने के लिए विराट के गीत ही काफी हैं।

''जर्जर सी दीवारें औ दहते स्तम्भ
रिसती छत, धँसी नींव, गरिमा का दंभ,
भूमि रहन और पडा आँगन वीरान,
पीढी ने पाया विरासती मकान।''

इन्होंने लगभग १४ गीत संग्रह और १२ गजल संग्रहों से अपना रचनाकर्म सँवारा हैं। विषय के आधार पर वर्गीकरण संभव नहीं है। एक ही विषय पर विविधतापूर्वक लिखने के कारण इनकी रचनाओं में रोमाचंकता विद्यमान है। रचनात्मकता का परिचय उनके निम्न कृतिव से मिलता है-

गीत संग्रह :

''जीवन की यात्रा के सबसे सच्चे साथी गीत रहे है। कभी बात कर लेने को, कभी मन बहलाने को। यात्रा में इसकी आवश्यकता को कम महत्व नहीं देना चाहिए। यात्रा के मधुरतम क्षण साथी से बात बहलाव के ही होते है।..... पर सजीव, सप्राण और शक्त गीत वे होते हैं जिनमें चलते हुए यात्री की सांस सुनाई दे, जिनमें प्रस्थान का नवोत्साह, राह की कर्तव्यमय थकान, मंजिल पर पहुंचने का संतोष आराम प्रतिबिम्बित हो, जिनमें प्रभात के मन्द गंध समीर का स्पर्श, दिन की गर्दगुबारी, लू लपट का झोंका और संध्या की शिथिल श्शीतल हवा का झोंका - संक्षेप में जिनमें हरकत हो, गति हो, जीवन हो।''

(बच्चन- प्रवास की डायरी)

(१) मेंहदी रची हथेली (१९६५) : यह इनका प्रथम गीत काव्य संग्रह है। प्रस्तुत संकलन में कई गीत संकलित हैं यह संग्रह अनुपलब्ध है। १९६५ में विरचित उनकी इस कृति में कुल इक्यावन गीत हैं। विराट के गीतात्मा रूझान और चिंतन के प्रारम्भिक चरणों को दर्शाने वाले संकलन है। इन संकलनों में जहाँ कवि एक ओर प्रेम, सौन्दर्य एवं दर्द का निरूपण करता है, वहीं दूसरी ओर इनमें राष्ट्रीयता और नवनिर्माण के लिए विविध रूपात्मक संदर्भ भी प्रकट हुए है। इन गीतों की रचना का हेतु उनकी प्रबल अनुभूतियों में निहित हैं उनकी काव्यकृति के प्रारम्भ में लिखा है–

'' दुख ने जब मन को मथ डाला
तब आँसू का नवनीत मिला
जब दर्द घुल गया, साँसों में
तब अधरों को मधुगीत मिला।''

यद्यपि स्वयं कवि ने पीडा को अपने गीतों की प्रेरणा स्वीकार किया हैं, किन्तु यह पीडा सहज न होकर कृत्रिम सिद्ध होती है, क्योंकि इसमें विरह भावों का आदेश शिथिल है। काव्य कथन बनकर प्रकट हुआ है, संवेदना सघन क्रन्दन बनकर नहीं आई हैं। इस संदर्भ में निम्न उदाहरण दर्शनीय है–

'' एक भी ऐसी नहीं है साँस अब तो,
जो तुम्हारी तरल सुधि से नम नहीं हैं
पुतलियों में मूर्तिवत ही जड गयी तुम
एक मन्दिर बन गई हैं आँखें मेरी।।''

समीक्ष्य संग्रह के कुछ ही गीतों में वेदना का चित्रण है, 'तुम ओ मेरी नीलम नयने' जैसे गीतों में मिलन का आनन्द है, प्रसन्न परिवेश है, वेदना प्रेरित रूदन नहीं है। निसन्देह इस कृति के गीतों का उत्स केवल कवि की प्रबल अनुभूति ही हैं; कवि अपने मन की स्थिति के अनुसार प्रकृति को उदास और प्रसन्न देखता हैं।

(२) स्वर के सोपान (१९६८) : इस संग्रह के सर्वाधिक गीत संकलित हैं। इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन साहित्य भारती बम्बई से सन् १९६८ में हुआ। इसमें १६० गीत हैं। उन्होंने अपना यह संग्रह अपने पिताजी को समर्पित किया हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि– गीत साहित्य की एक अविच्छिन्न धारा है। कविता का लेखन प्राय: गीत रचना से ही प्रारम्भ होता है। गीत उनके अन्त:करण

की आवाज हैं, इसके लिए उन्हें कोई श्रम नहीं करना पडता है, गीत स्वत: ही भाषा बनकर प्रस्तुत हो जाते हैं। गीत मेरे कवि मन की प्रकृति हैं।''

श्री विराट की यह द्वितीय प्रकाशित कृति रचनाकार के नए रूप से परिचित कराती है। मेंहदी रची हथेली में वे एक श्रृंगाारिक कवि प्रतीत होते हैं तो स्वर के सोपान में श्रृंगाारिक अभिरूचि के साथ-साथ उनका राष्ट्रीय चेतना का रूप भी सामने आया है। इस प्रकार यह काव्यकृति उनके रचनात्मक विकास के साथ ही वैयक्तिक विकास की भी साक्ष्य बनी है। रूपसी प्रेयसी के समक्ष उसके रूप की प्रशंसा में व्यस्त कवि का राष्ट्रीय गौरव के समक्ष श्रद्धानत हो जाना कोई सामान्य बात नहीं हैं।

'' इसके आँगन भरी पडी है
संस्कृतियों की गाथा
इसके इतिहासों के समक्ष
खुद ही झुकता माथा। ''

कवि के मानस में राष्ट्र प्रेम का यह उदय पारिवारिक परिस्थिति से पोषित और संस्कार और विचारों से विकसित है। कवि के प्रारम्भिक रचना काल में यौवन के उद्दाम आवेग तंरगों के प्रवाह में उनकी श्रृंगाारिक वृर्त्ति ही परवर्ती कालावधि में राष्ट्रीय-भावों की दीपशिखा के रूप में अधिक ज्योंर्तिमय होती चली गई। ''भीतर की नागफनी, सन्नाटे की चीख, लडाई लम्बी है, न्याय कर मेरे समय'' आदि उनकी कृतियाँ इसी बात का प्रमाण है।

'जिस जगह मूक हो जाती है कविता
बस उसी जगह लेता है गीत जन्म।''

उक्त पंद्याश लिखते हुए मन का विश्वास और गहन हो गया था कि जब कविता ऊर्ध्वमुखी होकर स्वर के पंखों पर आरोहित होती है, वह क्षण ही गीत का उद्गम क्षण है। अनुभूति घनीभूत होकर सहज-धर्मालय के संस्कार स्वीकार करती हुई स्वर से स्वयंवर रचाती है और गीत का अनायास ही जन्म होता है। गीतकार कहता है कि गीत रचना एक अनायास उपलब्धि है। इसी संदर्भ में वे कहते है कि-

'' मुझसे हुआ नहीं तर्को के
अनुशासित छंदों में गाऊँ
बुद्धि प्रेत के संकेतों पर
प्रयसिक स्वर में दुहराऊँ।''

वे लिखतें हैं कि– जीवन की घोर व्यस्तताओं से कुछ क्षण चुराकर गीत की बांसुरी की कुछ साँसें सौंपता है। यही मेरे अंतस के सृजनधर्मा कवि की रचना प्रक्रिया हैं रचनाकार स्वर शिल्पियों का निरन्तर आग्रह रहा है उन्हें गीत अपने सहजतम गुणों के साथ उपलब्ध हों, ताकि वे काव्य एवं श्रव्य की साधना में कुछ और वृद्धि कर सके। विनम्र भाव से मेरे गीत स्वर के सोपान चढने के लिए उद्धत है, देखूँ कि कितना स्नेह सहजेते हैं ?

(३) ओ मेरे अनाम (१९६८) : इस संकलन में जीवन के विविध विषयों पर आधरित ५० गीतों का संग्रह किया गया है। इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन 'लोक चेतना प्रकाशन' जबलपुर मध्य प्रदेश से सन् १९६८ में हुआ। अपना यह संग्रह उन्होंने अपनी ममतामयी माँ को समर्पित किया हैं।

''रूप अनेकों मिले राह में,
पर मुझको जिसकी तलाश में
वही अनाम नहीं मिलता।''

इस संग्रह के गीत अटूट आस्था और अटल निष्ठा के लिए समर्पित है। ये अनुभूत जीवन की अभिव्यक्ति के गीत हैं। इन गीतों की प्रेरणा कवि को जीवन संग्राम की प्रत्यक्ष अनुभूतियों से प्राप्त हुई है। श्रृंगाार इस संग्रह के गीतों का केन्द्रीय भाव हैं। यद्यपि अधिकांश गीत लौकिक धरातल पर नायक–नायिका के मिलन एवं विरह की प्रतीति कराते है, तथापि ओ मेरे अनाम जैसे गीतों में आध्यात्मिक भावभूमि का भी स्पष्ट संकेत मिलता है।

लेखक ने यथार्थ सामयिक शाश्वत परिस्थितियों का अवलोकन कर इस गीत की रचना की है, इसी सन्दर्भ में वे कहते है कि–

''यह नहीं जरूरी हर बादल बरसे
हर बार धरा की प्यास शमन ही हो
सब पाँव नहीं जाते हैं मंजिल तक
सबकी सब नावें पार नहीं जाती
सबके सब पत्थर मूर्ति नहीं बन पाते
सबकी सब कलियाँ फूल नहीं बन पाती।''

अगले गीत में सयानी होती बेटी के बारे में विचार कर एक पिता उसके विवाह के विषय में विचाार कर अपनी संवेदनाओं को प्रकट करता हैं। विराट जी ने सामाजिक विषमता और अव्यवस्था पर प्रकाश डाला हैं ।

(४) किरण के कशीदे (१९७४) : किरण के कशीदें अनेक दृष्टियों से कवि के काव्य कौशल के विकसित आयामों को प्रस्तुत करता है. सौन्दर्य दृष्टि, रागात्मकता, सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति, प्रकृति की विराट अभिव्यंजना के साथ ही महानगर बोध और आस्था के संदर्भ आदि सब मिलकर प्रस्तुत संकलन को श्रेष्ठता प्रदान करते है। अनेक दृष्टियों से कवि के काव्य-कौशल के विकसित आयामों को प्रस्तुत करता हैं।

''कढे हुए मेघो पर
किरण के कशीदे
यंत्रों की दुनिया में कौन पर खरीदे।''

सन् १९७४ में सरला प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित इस कृति में कुल ५७ गीत हैं। श्री विराट मूल रूप से कोमल भावनाओं और सरल तरल संवेदनाओं के भावुक गीतकार हैं। उनकी सौन्दर्य दृष्टि न केवल मानवीय संदर्भो में अपितु प्राकृतिक सन्दर्भो में भी सौन्दर्य का दर्शन करती हैं यादों के चीड, मौलसिरी फूली, बंसवट में बंसरी, पीला कनेर, निशिगंधा द्वार महकी, आदि उनके अनेक गीत इसके साक्षी है। इस संग्रह के गीतों में केवल कल्पना का नहीं, अपितु व्यवहारिक जीवन की कटुताओं के अनुभव को भी शब्दबद्ध करने का प्रयास किया गया है।

''वक्त बदला हुआ देख बदले सभी,
जो सगे थे हमारे वे चचेरे हुए।''

एक अन्य उदाहरण देखिये:-

''आवाजों आज मुझे एकाकी छोड दो
भीड से अलग भी तो
मेरा अस्तित्व हो
निजी इकाई मेरी
स्व पर स्वामित्व हो।''

आधुनिक युग के यांत्रिक कोलाहल से त्रस्त व्यक्ति की परेशानियों को व्यक्त करते हुए कवि कहते है कि किस प्रकार व्यक्ति आज के माहौल में मन की शांति और खुद का अस्तित्व बचाने का संघर्ष कर रहा है यह भाव व्यक्त किया हैं तथा इस संग्रह में कवि ने व्यक्त किया है कि गीत ने उनके स्वभाव को रंग लिया हैं। वास्तव में गीत, लेखनी और सृजनता यह सब विराट के व्यक्तित्व का एक अंग बन चुके

हैं, इनके बिना उनके अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उनके गीतों में जीवन्त अनुभूतियों की अनेक छायाएँ आलोकित होती है। जीवन के अनेक अछूते जीवन्त क्षणों पर उनके द्वारा प्रकाश डाला गया हैं।

'दर्शन पा लिया' गीत में कवि प्राकृतिक उपकरणों में अपने प्रिय का सौन्दर्य दर्शन वैसे ही प्राप्त करता है जैसे कि साकेत में विरहिणी उर्मिला शरद ऋतु के सौन्दर्य उपकरणों में अपने प्रियतम लक्ष्मण की छवि देखती है।

निरखि सखी ये खंजन आये ।
फेरे उन मेंरे रंजन ने नैन इधर मन भाए।
फैला उनके तन का आतप मन ने सर सरसाए।
घूमें वे इस ओर वहाँ ये हंस उड यहाँ छाये
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुस्काये
फूल उठे हैं कमल, अधर से ये बन्धूक सुहाये।
स्वागत स्वागत शरद भाग्य से मैंने दर्शन पाये।
नभ ने मोती वारे, लो ये अश्रु अर्घ्य भर लाये

(५) मिट्टी मेरे देश की (१९७५) : मिट्टी मेरे देश की राष्ट्रीय भावनाओं को व्यंजित करता है, इस संकलन के गीतों में निर्माण के स्वर भरे पडे है। १४८ गीतों के इस संकलन के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् १९७५ में प्रगति प्रकाशन आगरा से प्रकाशित हुआ। यह संकलन इनकी पुत्री सुश्री स्वप्ना को समर्पित हैं। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत इस संकलन के राष्ट्रीय गीतों के पठन से पाठकों के मन में राष्ट्रीय भावना का उद्बोधन होता है।

एक समर्थ कवि अपने परिवेश में उपलब्ध सभी विषयों को स्पर्श करता है; उन्हें स्वर देकर जीवन्त बनाता है। उसका भीतरी कवि समभाव से सभी दृश्यों से अभिभूत होकर उन्हें अपनी लेखनी से उकेरता है। अपने देश की मिट्टी के प्रति सर्वदा जागरूक एवं चैतन्य पहरेदार के रूप में उसने हमेशा जागते रहो की आवाज लगायी। देश की मिट्टी के प्रति एक ऋणभाव उसके मन में समाया है, जिससे प्रेरित होकर हर बार वह अपने प्रेम एवं सौन्दर्य के शीशमहल से बाहर निकलकर उसे अपने मस्तक पर चन्दन के तिलक की भाँति लगाा लेता है। यह संग्रह विराट की ओर से अपनी मातृभूमि को समर्पित वे श्रद्धासुमन हैं, जिसमें देश के प्रति उनकी निष्ठा की गंध हैं। स्वर के सोपान के कुछ राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत गीत इस संग्रह

में भी प्रस्तुत हुए हैं। स्वर के सोपान में कवि की राष्ट्रीय भावना बीज और अंकुर रूप में थी, जबकि इस संग्रह में वह पूर्ण परिपक्व रूप में सामने आई है।

इस संग्रह में कवि की प्रखर देशभक्ति और सामाजिक जागरूकता के परिचायक है। देश प्रेम के साथ-साथ उसमें समसामयिक सामाजिक समस्याओं के समाधान उदार दृष्टि से राष्ट्रीय भावों में दर्शायें गये हैं। उन्होंने कुछ गीतों में देश के वन्दनीय व्यक्तित्वों को तो, कुछ गीतों में देश के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक वैभव को नमन किया हैं। 'श्रम गंगा में आज नहा लो, शपथें उठाने का समय, निर्माण बुलातें हैं तुमको' जैसे गीतों में देश के नवनिर्माण का संकल्प हैं। इस प्रकार इस गीत संग्रह का धरातल अत्यन्त विस्तृत है।

इस संकलन में राष्ट्रीय भावनाओं को व्यंजित करता है, जिसके गीतों में निर्माण के स्वर भरे पडे हैं। सन् १९७६ में प्रकाशित दर्द कैसे चुप रहे में दर्द अभिव्यक्ति का प्रमुख आधार बना हैं। चाहे संदर्भ प्रेम का हो अथवा युग व्यापी विसंगतियों की वेदना सर्वत्र मुखर रही है। सन् १९७७ में प्रकाशित भीतर की नागफनी कवि विराट के आधुनिक बोध को समर्थता से व्यक्त करता संकलन हैं और यह सिद्ध करता है कि आधुनिक विसंगतियों से प्राप्त अनुभूतियों को व्यक्त करने का सामर्थ्य गीत में अधिक सशक्त हैं। वह केवल प्रेम प्रसंगों में वायवी उडान भरता हुआ पंछी नही हैं, बल्कि मनुष्य के सुख-दुख में डूबा, उसके अनुभवों को तदनुरूप आकार देता हुआ जमीन से जुडा जीवित संवेदन भी हैं । अस्तु प्रस्तुत संकलन जीवन का बहुविध प्रवृतियों को आकार देता हैं और कठोर वास्तविकताओं का साक्षात्कार प्रस्तुत करता हुआ अपनी शक्तिमता प्रदर्शित करता है। वस्तुत: विराट का यह संकलन आधुनिकता के बीच व्यक्ति की तडप के विभिन्न रूप प्रदर्शित करता हुआ मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। सन् १९७८ में प्रकाशित संकलन पलकों में आकाश प्रेम संदर्भो के सुख-दुखमय चित्र उकेरता हुआ जिन्दगी की व्याख्या कर आस्था के मन्त्रों को उच्चारित करता है।

रूप, रस, यौवन, प्रेम एवं सौन्दर्य के गीत गाते हुए अपनी जन्मभूमि उस ममतामयी माटी के प्रति कृतज्ञता के भाव को व्यक्त किया हैं। अपने देश की मिट्टी के प्रति श्रद्धा भाव उनके मन में समाया है, जिससे प्रेरित होकर हर बार वह अपने प्रेम एवं सौन्दर्य के शीशमहल से बाहर निकलकर देश प्रेम को अपने मस्तक पर चंदन के तिलक की भाँति अर्चित कर लेता है। गाँधीजी के बलिदान एवं समर्पण के प्रति कृतज्ञ भाव व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि-

''तुमने अपने बलिदानों से
सीचीं धरती देश की
तुमने रखी परम्परा
जीवित निज राम महेश की
तुमने रोपे विश्वासों के पौधे राष्ट्र जमीन में
आज उसी आस्था की फसलें लहरा उठी ललाम है।''

कवि स्वर्ग के देवताओं की पूजा का विरोध करते हुए कहता है कि हम अपने विश्वास, समर्पण और मेहनत से इस धरती को स्वर्ग बना सकते है। इन काव्य पंक्तियों के द्वारा कवि देश वासियों को कर्मठ बनकर मेहनत करने के लिए प्रेरित करता है, वह चाहता है कि व्यक्ति का खुद पर विश्वास दृढ हो।

इस संग्रह के अधिकांश गीत भारत पर चीन (१९६२) एवं पाकिस्तान (१९६५) के आक्रमण के समय रचे गये। गीतकार श्री विराट की वंशाानुक्रम से प्राप्त और संस्कार पोषित देशभक्ति की दीपशिखा इस आपातकालीन परिवेश में और अधिक उद्दीप्त हुई। प्रस्तुत गीत संग्रह के गीत उसी दीपशिखा की स्वर्णिम रश्मियाँ हैं जो युगों-युगों तक हमारी राष्ट्रीय भावना को आलोकित करेंगी।

(६) पीले चावल द्वार पर(१९७६) : पीले चावल द्वार पर प्रेम संदर्भो का उभयपक्षीय चित्रण हुआ है। प्रेम सौन्दर्य को कल्पना के माध्यम से उकेरा गया है तो वेदना को भी गहन गहराईयों के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इसकी वैचारिक भूमि भी अत्यन्त पुष्ट है।

इस गीत संग्रह में गीतकार ने जीवन की वास्तविकताओं को सत्यता से प्रमाणित किया है। प्रेम के रंग में रंगे युवको को जीवन के सही मार्ग को दिखलाने का यथासंभव प्रयास किया है। विराट जी को जीवन में जो पीडाएँ मिली है, उसके लिए वह ईश्वर का आभार मानते है। उनके मत में यदि उनके जीवन में दु:ख ना आता तो उन्हें सुख की महत्ता का एहसास भी ना होता। आँखों में यदि आँसू ना होते तो संवेदनाहीन होकर मैं पत्थर बन जाता। अत: वे दु:ख और पीडा को मानवीयता को जीवित रखने के लिए आवश्यक मानते है।

''एक तुम्हारा रूप नहीं केवल कथ्य प्रिये
और विषय भी इस जीवन के गाने लायक हैं
जीवन सिर्फ प्रणय की सेज न है श्रृंगाारमयी
शोक भरे से इसमें सजल पहर भी शामिल हैं

इस पदार्थवादी दुनिया में सिवा प्यार के भी
लाश स्वयं की ढोते हुए सफर भी शामिल हैं

श्री विराट के गीतों का यह काव्य-संकलन साहित्य परिषद भोपाल द्वारा माखन लाल चतुर्वेदी पुरस्कार एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ से पुरस्कृत हैं। इसमें प्रेम संदर्भो का उभयपक्षीय चित्रण अत्यन्त सुन्दरता से हुआ हैं। इसके गीतों में जहाँ एक ओर प्रेम और सौन्दर्य की विराट कल्पना के माध्यम से उकेरा गया हैं, दूसरी ओर वेदना भी गहराइयों के साथ व्यंजित हुई है। इसकी वैचारिक पृष्ठभूमि अत्यन्त पुष्ट है।

एक तुम्हारा प्यार नहीं हैं केवल सत्य प्रिये
और सत्य भी जीवन के अपनाने लायक है।''

(७) दर्द कैसे चुप रहे (१९७७) : दर्द चुप कैसे रहे में चाहे संदर्भ प्रेम का हो या युग व्यापी विसंगतियों की वेदना सर्वत्र मुखर रही है। विराट जी एक ऐसे कवि है जिनके गीतों में जीवन के हर रंग हैं, वे सच्चे प्रेम को महत्वपूर्ण मानते हुए जीवन के कण्टाकीर्ण पथ पर आगे बढने के लिए उसे एक आवश्यक माध्यम मानते है।

मैं जब भी जिसे पूजता हूँ जग में
देव वही निष्ठुर वाहन बन जाता है
जिसकी छाया में क्षण भर रुक जाता हूँ
आघातों की गाज उसी पर गिरती है
ऐसी कुछ अपशकुनों की छाया मुझ पर
बेमौसम ही काली बदली गिरती है।

इस गीत के माध्यम से कवि ने अपने जीवन की एक ऐसी सच्चाई को व्यक्त किया है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता, यह उनकी निजी अनुभूति है, जिसे वह अपनी बदनसीबी से जोडते है।

(८) भीतर की नागफनी (१९७७) : भीतर की नागफनी नामक यह संकलन कवि विराट के आधुनिक बोध को समर्थता से व्यक्त करता है और यह सिद्ध करता है कि आधुनिक विसंगतियो को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए गीत से उत्कृष्ट कोई ओर विधा नहीं हैं। वह केवल प्रेम प्रसंगों में वायवी उडान भरता हुआ पंछी नहीं है, बल्कि मनुष्य के सुख-दु:ख में डूबा, उसके अनुभवों को तदनुरूप आकार देता हुआ जमीन से जुडा जीवित संवेदन भी है। अस्तु प्रस्तुत संकलन जीवन की बहुविध प्रवृतियों को

व्यक्त करता है। सर्वग्राही उपभोक्तावादी संस्कृति समाज के श्रेष्ठ मूल्यों को लील रही है, साथ ही मानवीय संवेदना को नष्ट करने पर तुली है।

विवेच्य गीतकार ने आज के शिक्षित बेरोजगारों की दुर्दशा का वर्णन इस कविता के माध्यम से करते हुए कहा है कि देश के नौजवानों के जवान सपने, बेरोजगाारी की वजह से दम तोड रहे है, प्रतिभा सम्पन्न होकर भी, हाथों में कुदाली, फावडा लेकर गिट्टी तोड रहे हैं, सिर्फ पेट की आग बुझाने के लिए। आज भी हमारे देश में प्रतिभाशाली लाखों नौजवान युवक फुटपाथों पर ही बसेरा कर रहे हैं, दो वक्त कर रोटी के लिए भी तरस रहे है।

सपने तरूण मगर दम तोड रहे,
होनहार कर गिट्टी फोड रहे
प्रतिभाएँ बेछत फुटपाथों पर,
काँदा रोटी भी ना हाथों पर।

समाज में व्याप्त बुराइयों पर प्रकाश डालने का प्रयास करते हुए नशा आदि कुरीतियों का विरोध करते हैं। आज के युग में हर व्यक्ति केवल दूसरे की बर्बादी ही चाहते हैं–

''कुछ लोग चाहते है ऐसी नशा पिलायें
दो चार पीढियों तक हमको होश ना आये
मासूम वे बहुत हैं संभव कि बहक जायें
घर फूँकने स्वयं का अंगार दहक जायें।''

देश में व्याप्त अनाचार से त्रस्त मानव को बदलाव की आशा के प्रति आश्वस्त करते हुए, अँधेरे को रोशनी और उम्मीद से भरते हुए कवि कहता है कि–

देवभूमि यह जन्म दिये है इसने ही अवतार को
ज्योतिस्तंभ बन हरती आयी यह जग के अंधियार को
मुझको है विश्वास कि धरती बांझ नहीं इस देश की
फिर से कोई नया मसीहा देगी संसार को।

(९) पलकों में आकाश (१९७८) : विराट जी कहते है कि आज के समय में किसी को रूलाना तो आसान है, पर रोते हुए को हसाँना मुश्किल है। इसी क्रम में वे कहते है कि अगर हम किसी को सुख नहीं दे सकते तो उसके सुख, खुशी और मुस्कान को छीनने का भी हमें कोई अधिकार नहीं है। इस सन्दर्भ में उनका यह गीत इस प्रकार है–